VISHVA–JYOTI
REGD NO. PB-HSP-01
(1.1.2021 TO 31.12.2023)
R.N. No. 1/57
ISSN 0505-7523

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)

(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

72वां वर्ष, अंक 5, अगस्त, 2023

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

ISSN 0505-7523

प्रकाशक
विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)
(अभिनिर्देशित पत्रिका)
(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै. शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर.

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर (वि.वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़.

डॉ. जयप्रकाश शर्मा, 1486, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़.

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर (वि.वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ–13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब.

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस.(I) रिटा0, शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर.

प्रो. (सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी–7 / 309, डी.सी. लिंक रोड, होशियारपुर (पंजाब).

डॉ. डी. रामकृष्णन, 301, वरुण एनक्लेव, एन.आर.पी. रोड, गाँधी नगर, विजयवाड़ा,

आन्ध्रा प्रदेश–520 003

डॉ. नरसिंह चरणपंडा, वी.वी.बी.आई.एस.एण्ड आई.एस. (पं. वि.पटल), साधु आश्रम, होशियारपुर.

प्रो. (डा.) ऋतुबाला, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).

दूरभाष : कार्यालय : 01882 – 223582, 223606

संचालक (निवास) : 01882–244750

E-mail : vvrinstitute@gmail.com
vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर
(पंजाब)

निर्णायकमण्डल सदस्य (Review Committee)

- प्रो. रघवीर सिंह, आदरी प्रोफैसर, वी.वी.आर.आई., साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).
- प्रो. ललित प्रसाद गौड, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा).
- प्रो. मुकेश कुमार अरोड़ा, हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, लुधियाना (पंजाब).
- प्रो. (डा.). सुधांशु कुमार षडंगी, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).
- प्रो. (डा.). ऋतुबाला, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).

ISSN 0505-7523

भारत में एक प्रति का मूल्य : १0 रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : ३ डालर.

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका (**Peer Reviewed Journal**) विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है।

२ पत्रिका (**JOURNAL**) प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है।

४ इसके अप्रैल-मई एवं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

विशेष: स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति निःशुल्क नियमतः भेजी जाती है।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति निःशुल्क भी भेजी जा सकती है।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं। जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को निःशुल्क भेजा जाता है।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रु: विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रु: तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रु: तथा विदेश में ३०० डालर है। विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रु: तथा विदेश में १२ डालर हैं।

विशेष:- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है।

सम्पादक

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ. निर्मल कौशिक	भारतीय चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में आत्मा की अवधारणा	लेख	८
प्रो. मधुसूदन म. व्यास	थाईलेन्ड की रामकथा परंपरा का महाकाव्य रामकीर्तिमहाकाव्यम्	लेख	१३
डॉ. रामनारायण शास्त्री	हृदयम् कथं हृदयम् = हृदय हृदय क्यों ?	लेख	१९
डॉ. योगेश प्रसाद पाण्डेय	शाक्तागम में कुण्डलिनी योग का स्वरूप	लेख	२३
डॉ. चन्दा कुमारी	रामायणकालीन कृषि-विज्ञान की वर्तमान समय में प्रांसगिकता	लेख	२९
डॉ. भावना सोनी	कविश्री हर्षदेव माधव की कविता में युगबोध	लेख	३२
डॉ. सत्यदेव सिंह	न्यायदर्शन के अनुसार षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्षप्राप्ति	लेख	३७
सुश्री सुमन बाला	महाकवि भास विरचित प्रतिमानाटक में पारिवारिक संबंधों की अभिव्यंजना	लेख	४५
श्री एस. एम. गोयल	पुस्तक-समीक्षा		५१
	संस्थान-समाचार		५३
	पुण्य-पृष्ठ		५४

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ७२ } होश्यारपुर, श्रावण, २०७९; अगस्त २०२३ { संख्या-५

विश्वे अद्य मरुतो विश्वे ऊती,
विश्वे भन्त्यग्नय समिद्धाः ।।
विश्वे नो देवा अवसाऽऽगमन्तु,
विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ।।
(ऋ., १०.३५.१३)

सब ही मारुतदेव हमारी सहायता के लिए आवें। सभी अग्नि देवता हमारे लिए प्रकाशमान होकर आवें। सभी देवगण हमारे लिए परिपालन से युक्त होकर आवें। सब धन और बल हमारे लिए हो

(वेदसार - विश्वबन्धुः)

यत् ते पवित्रमर्चिषि, अग्ने विततमन्तरा।
ब्रह्म तेन पुनीहि नः ।।
(ऋ. ९, ६७, २३)

(अग्ने) हे अग्निदेव! (पवित्रम्) जो पवित्र प्रकाश (ते) तेरी (अर्चिषि) ज्वाला के (अन्तरा) अन्दर (विततम्) प्रकाशमान हो रहा है, (तेन) उसके द्वारा (नः) हमें (पुनीहि) पवित्र करो।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. ५
अगस्त ,२०२३

भारतीय चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में आत्मा की अवधारणा

- डॉ. निर्मल कौशिक

भारतीय साहित्य और दर्शन आध्यात्मिक चिन्तन से प्रेरित है। भारत की सनातन संस्कृति की अक्षुण्ण धारा युगों-युगों से यहां के जनमानस को एक चेतना का आभास कराती आ रही है जो मानव को 'स्व' को जानने और आत्मबोध की पराकाष्ठा तक ले जाने का मार्ग प्रशस्त करती है। भारत हजारों वर्ष पूर्व अध्यात्मगुरु के पद पर आसीन था। अध्यात्म का विश्लेषण अधि + आत्म अर्थात् अपने समीप होना अर्थात् स्वयं को जानने का प्रयास करना। भारतीय संस्कृति धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत है। भारतीय धर्म का आधार है आस्तिकता, सर्वशक्तिमान व्यापक भगवान् की सत्ता में अटूट विश्वास। वेदों की रचना से लेकर ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, षड्दर्शन, पुराण आदि अनेक ग्रन्थ आत्मतत्त्व खोज में रचे गए लेकिन अन्ततः 'नेति नेति' कह कर केवल स्वानुभूति को ही प्रमाण मानकर शान्त हो गए। अनेक ऋषियों, मुनियों, सिद्ध, साधकों ने अपने-अपने अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर उस सत्ता को विभिन्न रूप और नाम दिए लेकिन सर्वसम्मति नहीं दे पाए।

हम सबने लोगों को कहते सुना है कि अपनी आत्मा की आवाज सुनो। उसने आत्म-भाव से मेरा सम्मान किया। उसका मुझसे आत्मीय सम्बन्ध है। मेरी आत्मा नहीं मानती। आत्म-चिन्तन करो। अब प्रश्न है कि यह आत्मा, आत्मभाव, आत्मीयता है क्या ? वास्तव में यह दर्शनशास्त्र का विषय है, आजकल इसे मनोवैज्ञानकि दृष्टि से भी आंका जाने लगा है। भारतीय दर्शन में परमात्मा शब्द में ही इसके अस्तित्व का रहस्य छिपा है। परम+आत्मा अर्थात् बड़ी या महान् आत्मा। कुछ विद्वान् या साधक लोग आत्मा को परमात्मा का अंश मानते हैं और आत्मा को परमात्मा के गुणों से ही अलंकृत मानते हैं। आत्मा को सूक्ष्म शरीर भी कहा जाता है। इसका अर्थ हुआ कि आत्मा चेतना भी है, सूक्ष्म शरीर भी है और ईश्वरीय अंश भी है। मगर शरीर तो नश्वर है और आत्मा अजर अमर। कुछ ग्रन्थ यह मानते है कि ईश्वर सर्वव्यापक है और सृष्टि के कण-२ में विद्यमान है। ईशावास्योपनिषद् के अनुसार अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी चराचर जगत् तुम्हारे देखने-सुनने में आ रहा है वह सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधिपति सर्वज्ञ, सर्वकल्याण-कर्ता गुण-स्वरूप परमेश्वर से व्याप्त है। तुम इस जगत् में केवल त्यगाभाव से कर्त्तव्य पालन करने के लिए ही विषयों का उपभोग करो अर्थात् ईश्वर की पूजा के लिए ही कर्मों का

आचरण करो।[1] अगर ईश्वर कण-कण में विद्यमान है, प्रत्येक जीव के हृदय में है तो कह सकते हैं कि ईश्वर आत्मा के रूप में प्रत्येक जीव में निवास करता है जिससे शरीर में चेतना आती है। आत्मा के लुप्त होने पर नश्वर शरीर चेतना विहीन (मृत) हो जाता है। पंचभूत शरीर व्यर्थ हो जाने पर नष्ट हो जाता है तो फिर आत्मा कहां रहती है ? अगर आत्मा ईश्वर का अंश ईश्वर में मिल जाता है तो फिर आत्मा का अस्तित्व क्या है? यह विचारणीय प्रश्न है। इस दृष्टि से महापुरुषों के वचनों ओर धर्म-ग्रन्थों की चिन्तन धाराओं को आधार मानकर आत्मा के अस्तित्व के बारे में आपना-२ मत रखते हैं। मृत्यु के बाद सब कुछ नष्ट हो जाता है और दूसरा मत है कि मृत्यु के बाद नया जीवन भी होता है। अगर कोई आत्मा के विषय में आत्म-अनुभव की बात करना भी चाहे तो वह गूंगे के गुड की भांति स्वयं असमर्थ ही पाता है। कबीर जी कहते हैं-

आत्म अनुभव ज्ञान की जो कोई पूछे बात।
सो गूंगा गुड खाइके कहे कौन मुख स्वाद।।

(कबीर वाणी)

यदि हम विश्वास कर लें कि ईश्वर का अंश हमारे अन्दर विद्यमान है तो फिर सिद्ध, साधक, ऋषि, मुनि वनों में जाकर साधना किसकी करते हैं? गुरु तेग बहादुर जी कहते है-

काहे रे वन खोजन जाई,
सर्व निवासी सदा अलेपा तोहि संग समाई।।

(धनासरी महला - ९)

कबीर, फरीद, गुरुनानक आदि सन्तो ने सहज साधना से ईश्वर की भक्ति या ईश-स्मरण करने को कहा है। आत्मा के विषय में कबीर जी रूपक के माध्यम से कुम्भ को शरीर, बाहरी जल को ईश्वर और आत्मा को कुम्भ का जल बताकर प्रमाणित किया है कि शरीर के नष्ट हो जाने पर आत्मा का परमात्मा में मिलना स्वाभावकि ही है। अत: आत्मा परमात्मा का अद्वैत सम्बन्ध है-

जल में कुम्भ,कुम्भ में जल है भीतर बाहर पानी
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना यह तत कह्यो ज्ञानी

(कबीर वाणी)

आत्मा का स्वरूप घट के जल की आकृति जैसा है अगर पानी किसी और बर्तन में डालेंगे तो उसकी आकृति उसके जैसी हो जाएगी। आत्मा भी जब शरीर में प्रवेश करती है उसका स्वरूप वैसा ही हो जाता है। यदि हम पानी से भरे बर्तनों में सूर्य की आकृति देखेंगे तो सभी बर्तनों में सूर्य की आकृति बिम्ब के रूप में दिखाई देगी। यदि स्थिति आत्मा की है जो ईश्वर का ही बिम्ब रूप है। केवल माया या भ्रम के कारण अनेक सूर्य दिखाई देते हैं, वास्तव में सूर्य तो एक ही है। आत्मा भी माया के आवरण के कारण भिन्न दिखाई देती है वास्तव में यह अजर-अमर, सनातन और शाश्वत है। गीता में भगवान् कृष्ण ने इसी बात को स्पष्ट शब्दों में कहा है।[2]

भौतिकवादी कुछ विद्वान् आत्मा के इस स्वरूप और परिवर्तन को स्वीकार नहीं करते। ''भौतिकवादियों के अनुसार शरीर सहित सभी

---

१. ईशावास्योपनिषद्, १ २. गीता, २.२२

पदार्थ अलग-अलग भौतिक तत्त्वों से निर्मित हैं। भले ही इन तत्त्वों की गिनती के विषय में सभी मत एक नहीं हैं कुछ इनकी गिनती चार बताते हैं तो कुछ पांच। मानवीय चेतना भी इन्ही तत्त्वों के मेल से उत्पन्न होती है'' धर्मदर्शन मनजीत सिंह पृष्ठ १११।

अर्थात् मृत्यु सब कुछ समाप्त कर देती है। कुछ भी शेष नहीं रहता। इसे Death ends all का धर्मदर्शन सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त को भारतीय दर्शन में चार्वाक दर्शन के नाम से अभिहित किया गया है- अर्थात् चार्वाक के अनुसार यह शरीर नश्वर है और इसके बाद आवागमन नही होता है। पाश्चात्य चिन्तकों ने इसे Eat, Drink and Be Marry कहा है। खाओ, पीओ और मौज करो।

अध्यात्मवादी सिद्धान्त के अनुसार शरीर के नष्ट हो जाने पर आत्मा दूसरा शरीर धारण करती है इसे सिद्धांत Life after death भी कहा है। अर्थात् आत्मा अमर है और शरीर नाशवान्। ''मानवीय शरीर समाप्त होने के बाद भी आत्मा अमर रहती है। यह विचार ईश्वरवादी विचाराधारा पर टिका हुआ है। इसके अनुसार शरीर और आत्मा को भिन्न माना गया है। शरीर पंचभौतिक तत्त्वों (कुछ धर्मों के अनुसार चार) से निर्मित है जबकि आत्मा अभौतिक है। क्योंकि भौतिक तत्वों का नाश निश्चित है इसलिए शरीर का नाश भी निश्चित है। आत्मा अभौतिक होने के कारण नष्ट नहीं होती। शरीर के नष्ट होने पर या तो आत्मा अपने अन्तिम तत्व में विलीन हो जाती है या फिर कोई दूसरा शरीर धारण कर लेती है'' ''धर्मदर्शन मनजीत सिंह पृष्ठ ११३।।

आत्मा के अस्तित्व को कर्मवाद से जोड़ कर भी देखा जाता है। मनुष्य को अपना कर्त्तव्य समझकर केवल सत्कर्म ही करने चाहिए। अच्छे कर्मो का फल अच्छा मिलता है और बुरे कर्मो का फल बुरा। कर्म करते हुए मनुष्य को उसके फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए। फल की इच्छा न करते हुए उसे ईश्वर पर छोड़ देना चाहिए। कुछ कर्मो का फल हमें इस जन्म में भोगना पड़ता है और कुछ का अगले जन्म में। इससे सिद्ध होता है कि कर्मफल आत्मा के अस्तित्व से जुडा है। इस जन्म में न सही अगले जन्म में सही कर्मफल तो अवश्य मिलेगा। गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने केवल कर्म करने का ही सन्देश दिया है वह भी फल की इच्छा किए बिना।[३] अतः मनुष्य जैसा कर्म करता हे उसे वैसा ही उस जन्म में ही फल न सही अगले जन्म में ही सही कर्मफल तो निश्चित है। अतः कर्मो का ही सम्बन्ध आत्मा से है। आत्मा के पुनर्जन्म के साथ ही कर्म भी अगले जन्म में फल देते हैं। कठोपनिषद् में नचिकेता के प्रश्न पर कि मरने के बाद आत्मा रहता है कि नही ? यमराज ने उत्तर दिया कि अवश्य रहता है और जीव बार-बार जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है।[४]

अर्थात् मनुष्य सोचता है कि जो कुछ दिखाई

---

३. गीता, २.४७ ; युद्धकाण्ड, १११.२५-२६ ४. कठोप., २.६

देता है वही लोक है। परलोक किसने देखा है। यही से मनुष्य बार-२ यमराज के चंगुल में फंसा रहता है और योनियों में जन्म लेता है।

यह आत्मा न तो किसी काल में जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला है क्योंकि यह अजन्मा नित्य, सनातन और पुरातन है शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।[5]

इसका अभिप्राय स्पष्ट है कि केवल शरीर ही नष्ट होता है आत्मा नहीं। आत्मा तो अमर होने के कारण नई योनि धारण कर लेती है। कर्म बन्धन से मुक्त होने पर जीवात्मा अपने मूल स्वरूप ईश्वर में समाहित हो जाती है जिसे मोक्ष या मुक्ति कहते है। भक्ति-सिद्धान्त के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा भिन्न हैं लेकिन अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा एक ही है। ईशावास्योपनिषद् के अनुसार- जो प्राणिमात्र को सर्वाधार परब्रह्म पुरुषोत्तम परमात्मा में देखता है सर्वान्तर्यामा परब्रह्म परमात्मा को प्राणिमात्र में देखता है वह किसी से घृणा या द्वेष कैसे कर सकता है।[6] इसी भाव को भगवान् ने गीता में कहा है कि जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझे ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मेरे अन्तर्गत देखता है उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता हूँ वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता है।[7]

अगर जीव और ब्रह्म एक ही हैं तो फिर आत्मा का पुनर्जन्म और मुक्ति और गति का रहस्य क्या है? कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि ब्रह्माण्ड ही ब्रह्म है इसके दो भाग जड और चेतन है। प्रकृति ईश्वर का शरीर है और शक्ति आत्मा है। पंचभौतिक शरीर बनता-मिटता रहता है। देह समाप्ति पर लगता है सब समाप्त हो गया। वास्तव में आत्मा के निकल जाने पर शरीर निष्क्रिय हो जाता है। और आत्मा नए शरीर की तलाश में लग जाता है। कुछ समय बाद आत्मा नया शरीर धारण कर लेती है।

इस विवेचन से एक बात तो स्पष्ट हो गई है कि जीवात्मा परमात्मा की ही तरह अजर, अमर, सत्य और सनातन है और ईश्वर का ही अंश है लेकिन अंश होने के साथ-२ ईश्वर के ही अधीन कर्मबन्धन में बंधकर विभिन्न रूपों का अथवा शरीरों को धारण करती है और ईश्वर ही इस आत्मा का नियन्ता है।

आत्मा इसी सत्य स्वरूप सर्वकारण ईश्वर का अंश होने के कारण ही शाश्वत और सनातन है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि यह आत्मा ईश्वर का अंश होने के कारण ही ईश्वरीय तत्त्वों से समाहित है।[8]

यह आत्मा अच्छेद्य है अदाह्य है, अक्लेद्य है और निस्सन्देह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर सदा रहने वाला और सनातन है-

---

५. गीता, २.२० ६. ईशावास्योपनिषद्, १.६ ७. गीता, ६.३०
८. गीता, २.२४

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।[९]

इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, जल गला नहीं सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकती। इतना तो स्पष्ट है कि आत्मा अजर अमर होते हुए भी शरीर के बिना क्रियाशील नहीं है। जैसा शरीर मिलता है आत्मा वैसा ही (कर्म) आचरण करती है। आत्मा और शरीर मिलकर कर्मगति में लीन होते हैं। कर्म तीन प्रकार के कहे गए है- क्रियामाणकर्म, संचित कर्म और प्रारब्ध धर्म। क्रियामाण कर्म जो हम वर्तमान में करते हैं। संचित कर्म अगले जन्म तक संचित होते रहते हैं। प्रारब्ध कर्म जो पिछले जन्म के कर्म अगले जन्म तक साथ चलते हैं। शुभ कर्मो का फल शुभ और अशुभ कर्मों का फल अशुभ होता है। शरीर के नष्ट होने पर आत्मा का पुनर्जन्म जीव के सत्कर्मो और दुष्कर्मों के आधार पर होता है। ज्ञानी, योगी, ऋषि, मुनि सिद्ध, साधक शरीराध्यास से मुक्त होकर अपनी आत्मा अथवा ब्रह्म में स्थित होते हैं। आत्मा का स्वरूप सत् चित् आनन्द है वे उसमें स्थित हो जाते है। जीवात्मा शरीर के सुख दु:ख को अपना समझ कर ही अपने को कर्ता तथा भोगता मानती है। निष्काम कर्म करने वाला कर्मों के सुख दु:ख रूपी फल की इच्छा नहीं करता। (हिन्दु धर्म का अध्यात्म चिन्तन पृ.३२)

सत्कर्म करने वाला जीव सात्त्विक वृत्ति का होता है वह सुख भोगता है। दुष्कर्म करने वाला तमोगुणी अज्ञान से उत्पन्न दु:ख भोगता है। सत्त्वगुणी अज्ञान से उत्पन्न दु:ख को भोगता है। सत्त्वगुण प्रधान शुभकर्म करने वाले जीव मृत्यु के बाद (स्वर्ग) उच्च लोकों में जाते हैं। रजोगुण प्रधान मनुष्य लोक में रहते हैं और तमो गुण प्रधान जीव कीट, पशु आदि नीच योनि व नरक को प्राप्त होते हैं।[१०]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारतीय चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में आत्मा की अवधारणा नितान्त स्पष्ट है। आत्म निरूपण के सन्दर्भ में आत्मा को एक वैयक्तिक अनुभव के माध्यम से सहज ही जाना और समझा जा सकता है। 'स्व' को जानना ही आत्म निरूपण है। आत्म चिन्तन ही ईश्वर के स्वरूप को जानने का माध्यम है। अगर हम आत्मा, शरीर और ईश्वर में भेद स्पष्ट करेंगे तो आत्मा और परमात्मा का गुण और स्वरूप की दृष्टि से समान और अभेद ही पाएंगे। यही बात भारतीय चिन्तको, दर्शन शास्त्रियों और धर्म ग्रन्थों ने बार-२ कही है।

जहां मे उसने बड़ी बात कर ली,
जिसने अपनी आत्मा से मुलाकात कर ली,
काम अच्छे कर ली है जिन्दगानी आपकी,
लोग भी सीखें सबक सुनकर कहानी आपकी।

- 163, आदर्श नगर, फरीदकोट। मो. 99157-02843

९. गीता, २.२३ १०. गीता, १४.१८

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

थाईलैन्ड की रामकथा परंपरा का महाकाव्य रामकीर्तिमहाकाव्यम्

- प्रो. मधुसूदन म. व्यास

महाकाव्य श्राव्य-काव्य की विधाओं में सबसे प्रमुख माना गया है महाकाव्य शब्द महत् और काव्य दोनों शब्दों को मिलाकार बना है। महत् का अर्थ महान् या बड़ा है। इस विशेषण से ही प्रस्तुत काव्य की प्रधानता प्रकट होती है। 'महाकाव्य' इस संज्ञा का प्रयोग वाल्मीकीय रामायण में मिलता है। यहाँ उसी वाल्मीकीय रामायण को महत् काव्य कहा गया है। उसी परम्परा में या यूं कहें कि रामकथा के ग्रंथ न केवल भारतभूमि में अपितु विश्व के देशों में प्रत्येक सदी में लिखे गए हैं। बीसवीं शताब्दी में रचित थाईदेश की रामकथा का महाकाव्य - 'रामकीर्ति' अपनी अनेक विशेषताओं से मंडित है।

किन्तु महाकाव्य शब्द के बारे में विचार करें, तो प्रस्तुत शब्द का अन्य नाम 'सर्गबंध' है। यह भी वाल्मीकि रामायण के प्रभाव से प्रचलन में आया हुआ प्रतीत होता है क्योंकि वाल्मीकीय रामायण पहला काव्य है जिसका विभाजन कांडों के अंतर्गत सर्गों में हुआ है। संस्कृत-महाकवियों में महाकवि माघ ने सर्वप्रथम महाकाव्य का विशिष्ट काव्य प्रकार के अर्थ में उल्लेख किया है।

विषमं सर्वतो भद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः।
श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तद्भवद् बलम्।।

शिशुपालवध १९/४१

परन्तु आदिकाव्य का विचार करते समय हमारी दृष्टि में आदिकवि वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' का विचार आता है चूंकि रामायण ही ऐसा महाकाव्य है जिसने दूरवर्ती अनेक कवियों-महाकवियों को स्वकीय सृजन की प्रेरणा दी है। थाईदेश के 'रामकीर्ति महाकाव्यम्' के आलेखन में भी रामायण ही प्रेरणा का स्रोत है। किन्तु रामायण पर अपने विचार डॉ. केशव मुसळगाँवकरजी ने इस प्रकार रखा है जो कि आदिरामकाव्य के माहात्म्य को बखुबी प्रकट करता है।

"वाल्मीकीय रामायण एक विकसनशील महाप्रबन्ध काव्य है और इसके मूलरूप में प्रधानता वीररस की ही है। किन्तु अपने स्वरूप के अनुसार यह सम्प्रति दूसरे ही रूप में प्रतिष्ठित है। इसलिए इस का प्रधान उद्देश्य युगानुरूप संयमित वीरता के साथ-साथ भारतीय आदर्श गार्हस्थ्यजीवन को अभिव्यक्त करना ही है। इस प्रकार रामायण प्राचीन राष्ट्रीय इतिहास एवं संस्कृति का कलात्मक प्रतीक है"।[1]

१. पृष्ठ - १६९, संस्कृत महाकाव्य की परंपरा, लेखक - डा. केशवराव मुसळगाँवकर, प्रकाशक - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणासी - प्रकाशन वर्ष १९६९

इस प्रकार रामायण का प्रभाव देखकर हम आगे बढ़ते हैं तो कालिदास के रघुवंश में रामकथा हमारे समक्ष आते हैं। क्योंकि परम्परा की दृष्टि से देखें तो जैसे रामकथा की परम्परा के आद्यस्थापक आदिकवि वाल्मीकि का स्मरण करते हैं वैसे ही उसी परम्परा के प्रोज्ज्वल नक्षत्र स्वरूप कालिदास को भी भूल नहीं सकते, क्योंकि इन्होंने रघुवंशमहाकाव्य में अनूठे ढंग से रामकथा को अभिव्यक्त किया है। इस सफल महाकाव्य की अनेक रंगछटाएँ साहित्य आकाश में फैली दिखती हैं। किन्तु महाकाव्यव्यकार ने जिन मानवीय भावों का आलेखन विविध प्रसंग पर किया है उसका आश्रय किन-किन छंदो को लेकर किया है इस की सुंदर संशोधनात्मक आलोचला डा. केशव मुसळगाँवकर जी ने दी है। रघुवंश के ग्यारह छंदो को दृष्टांत के रूप में दिखाकर प्रत्येक में कौन सी अभिव्यक्ति है वह उन्होंने क्रमश: दिया है किन्तु इस का निष्कर्ष कुछ शब्दों में इस प्रकार लिखा है। "इस प्रकार सफलता के लिए प्रस्थान या प्राप्ति में अन्वर्थनाम पुष्पताग्रा, निराशा के साथ निवृत्ति में तोटक, कृतकृत्यता में शालिनी तथा वीरता प्रदर्शन में औपच्छन्दसिक, क्रीडा के वर्णन में रथोद्धता, संयोग से स्वयंप्राय:, विपत्ति या संपत्ति में स्वागता, घबराहट में मत्तमयूर, प्रपंचो के परित्याग में नाराच तथा वीरता आदि के वर्णन में शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग किया है।" विविध भावों में किन-किन छन्दों का प्रयोग करके डा. सत्यव्रतशास्त्री ने रामकीर्तिमहाकाव्यम् में आलेखन किया है यह भी इस संदर्भ में देखा जा सकता है किन्तु डा. सत्यव्रतशास्त्री ने प्राचीन या पंचमहाकाव्यों की भाँति अपने महाकाव्य में भी करीब बीस छन्दों का प्रयोग किया है। डा. केवश मुसळगाँवकर ने प्रथम से बारहवीं शताब्दी तक के संस्कृत-महाकाव्यों का आमूलचूल अध्ययन किया है। इसी परंपरा में जितने रामकथाश्रित महाकाव्यों का आलेखन विविध शताब्दीयों में हुआ है इसका यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। रामायण का वाल्मीकि के अनुवर्ती समय को देखें तो चौथी से बारहवीं शताब्दियों के रामकाव्यों की सूची इस प्रकार है। जिसमें अलग सदी में हुए दो महाकवियों ने अपने महाकाव्यों का नाम 'रामचरितम्' रखा है, यह अनुठी बात है।[२]

	समय	कृतिनाम	कविनाम
१.	चौथी शताब्दी	रघुवंशम्	कालिदास
२.	सातवीं शताब्दी (पूर्वार्ध)	भट्टिकाव्यम्	भट्टि
३.	आठवीं शताब्दी	जानकीहरणम्	कुमारदास
४.	दसवीं शताब्दी (मध्यभाग)	रामचरितम्	अभिनंद
५.	ग्यारवीं शताब्दी (पूर्वार्ध)	रामचरितम्	संध्याकर नंदी
६.	बारहवीं शताब्दी	राघवपांडवीयम्	धनंजय

२. पृष्ठ - ३५७, संस्कृतमहाकाव्य की परम्परा - तत्रैव, प्रकाशक - चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, संस्करण - ४, प्रकाशन वर्ष - १९९८

इसके उपरान्त जैनियों का रामायण पर आधारित ग्रंथो या महाकाव्यों का क्या योगदान है? देखें तो आठवीं शताब्दी के विमलसूरि के 'पउमचरिउ' और हेमचंद्राचार्य का 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष' नामक कृति में रामकथा को अपने ढंग से आलेखित किया है। तदुपरांत सत्रहवीं शताब्दी में रामचूडामणि दीक्षित ने भी रामकथा पर महाकाव्य लिखा, जो रामायण महाकाव्यम् के नाम से हस्तलिखिरूप में प्राप्त होता है। अठारहवीं शताब्दी में केरल के मलबार प्रांत के रामपाणिपाद ऐसे महाकवि थे जिन्होंने राघवीयम् एवं विष्णुविलास नामक दो महाकाव्यों का आलेखन किया था। इस में राघवीयम् नामक कृति में बीस सर्गो में १५७२ श्लोकों में अपनी प्रतिभा का प्रकाश फैलाया है। तत: उन्नीसवीं शताब्दी के रामाधारित संस्कृतमहाकाव्यों को देखें तो नव्य चंडीदास नामक हरियाणा निवासी महाकवि का नाम है इन्होंने 'रघुनाथगुणोदय' नामक महाकाव्य में तेरह सर्ग में लिखा है। इस सूची में कुछ महत्त्वपूर्ण महाकाव्यों के नाम शायद नहीं होंगे जिसके लिए लेखक क्षमाप्रार्थी है। संस्कृत महाकाव्यों के बारे में जब यहां आलेखन करते हैं तब यह अविस्मरणीय बात है कि भले ही हम केवल रामकथाश्रित महाकाव्यों की सूची प्रस्तुत करें किन्तु जैसा कि डा. राधावल्लभ त्रिपाठी अपने संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास नामक ग्रंथ में लिखते हैं कि बीसवीं शताब्दी में संस्कृत में तीन सौ (३००) महाकाव्य लिखे गए हैं। तब महाकाव्यों की बाढ़ आ गई हो ऐसे प्रतीत होता है। इन्होंने प्रस्तुत मुद्दे को संक्षिप्तकर निम्नलिखित रूप से समापन किया है। इस शताब्दी के उल्लेखनीय महाकाव्य है- "पंडित क्षमाराव की 'सत्याग्रहगीता', 'उत्तरसत्यग्रहगीता', तथा 'शुम्भवधम्' तथा 'विन्ध्यवासिनीविजयम्', श्रीधरभास्कर वर्णेकर का 'शिवराज्योदेयम्', उमाशंकर त्रिपाठी का 'क्षत्रपतिचरितम्', परमानंद शास्त्री का 'जनविजयम्' तथा 'चीरहरणम्', प्रभुदास शास्त्री का 'गणपतिसम्भवम्', पद्मशास्त्री का 'लेलिनामृतम्', स्वामि भगवादाचार्य का 'भारतपारिजातम्' (यह महात्मा गाँधी पर महाकाव्य है), रेवाप्रसाद द्विवेदी का 'सीताचरितम्', तथा 'स्वातंत्र्यसम्भवम्', रसिकबिहारी जोशी का 'मोहभङ्म्' अभिराज राजेन्द्रमिश्र का 'जानकीजीवनम्', तथा 'वामनावतरणम्', सत्यव्रतशास्त्री का 'रामकीर्तिमहाकाव्यम्' तथा 'बोधसत्त्वचरितम्' आदि।[3]

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के संस्कृत महाकाव्यों का नाम स्मरण हमने किया जिसमें कई विद्यमान संस्कृत के महाकाव्य भी शामिल है। एवमेव रामकीर्तिमहाकाव्य का नाम स्मरण भी उसमें है।

---

३. पृष्ठ - ५११, संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, ले. - डा. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रकाशक - विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रकाशन वर्ष - २००७

रामकीर्तिमहाकाव्य के बारे में कुछ आकलन हो इससे पूर्व यह बताना चाहिए की वाल्मीकीय रामयणोपरांत संस्कृत महाकाव्यों में रघुवंश से लेकर रामकीर्तिमहाकाव्यम् तक जो रामकथा के महाकाव्यों की परम्परा रही उसमें प्राय: प्रत्येक शताब्दीयों में राम के ऊपर कम से कम एक रामकथाश्रित महाकाव्य अधिक प्रसद्धि बना है।

'रामकीर्तिमहाकाव्यम्' में कवि ने पच्चीस सर्गो में कुल मिलाकर बारह सौं इक्यानवे (१२९१) श्लोको में स्वकीय प्रतिभा से रामचरित का आलेखन बड़े ही अनूठे ढंग से किया है। चूंकि जब यह महाकाव्य लिखा गया तत्पश्चात् विविध दैनिकपत्रों मे एवं संस्कृत-पत्रिकाओं में इसकी प्रशंसा सामान्य पाठकों से लेकर विदग्ध विद्वज्जनों ने की है। तत: इसका अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में होने लगा। प्रस्तुत महाकाव्य की विशेषताओं का आगे चित्रण करेंगे। सम्प्रति इस के कथासूत्र को कवि ने किस ढंग से रखा है उसी का निदर्शन अभीष्ट है।

(१) भूमिका - थाईदेश वर्णन
(२) अनोमतन्नुपाख्यानम्
(३) रामजन्मोपाख्यान
(४) नंदकोपाख्यान
(५) रामवनवासोपाख्यान
(६) सीताहरणोपाख्यान-जटायुवधोपाख्यान
(७) हनुमत्संपर्कोपाख्यान
(८) दरभ्युपाख्यान-वालिवधोपाख्यान तथा लङ्कादहन
(१०) बेंजक-उपाख्यान
(११) नील-हनुमत्विग्रह-उपाख्यान
(१२) सुवर्णमत्स्योपाख्यान
(१३) मैयराबोपाख्यान
(१४) मैयराबोपाख्यान-पूर्ववृत्त
(१५) कुम्भकर्णवधोपाख्यान
(१६) मलिवग्गब्रह्मोपाख्यान
(१७) रावण-आत्म-उपाख्यान
(१८) महीपालदेवासुरोपाख्यान
(१९) लङ्का-उपद्रवोपाख्यान
(२०) सीतानिर्वासन-उपाख्यान
(२१) लवजन्मोपाख्यान
(२२) लवमंकुटरामसमागमोपाख्यान
(२३) सीतापातालप्रवेशोपाख्यान
(२४) सीतापातालप्रवेशोपाख्यानं पूर्वानुवृत्तम्
(२५) सीतारामसमागमोपाख्यान

इस प्रकार रामकीर्तिमहाकाव्य की परिसमाप्ति पञ्चविंध सर्ग में हुई है जैसे कि सर्ग के शीर्षक में ही बताया है कि सीता से राम का समागम इस अंतिम सर्ग में प्रस्तुत महाकाव्य में होता है अत: यह कथा सुखद है एवं अनेक गुणों से मंडित है।

प्राय: इस महाकाव्य का गुम्फन उपेन्द्रवज्रा - इन्द्रवज्रा या उपजाति छंदो में हुआ है। तथापि विविध जगह पर अनुष्टुप् एवं अन्य सुप्रसिद्ध छंदों के माध्यम से कवि ने कथा को आगे बढ़ाया है। इन छंदों में शिखरिणी, मंदाक्रान्ता एवं वसंततिलका, तोटक, द्रुतविलंबित, भुजङ्ग-प्रयात, मालिनी, वियोगिनी, स्वागता इत्यादि छन्द प्रमुख हैं। कुछ

स्थानों पर कवि ने महाकाव्यों के लक्षणानुसार सर्ग के अन्त में छंद परिवर्तन भी किया है तथापि उसी छंद का आश्रय लेकर कथाप्रवाह को आगे बढ़ाना उन्हें उचित नहीं लगता। कुल मिलाकर करीब पन्द्रह छंदो का आश्रय कवि ने लिया है। कवि की भाषा सरल एवं हृद्य है। जैसे कि बेंकोकदेश को ही थाईलेण्ड कहते हैं ऐसा उन्होंने इस प्रकार अभिव्यक्ति किया है।

बेंकाकेति समाख्यास्या यद्यपि प्रथिता पुरः।
तथाऽपि थाईदेशीया नैनयैतां प्रचक्षते।।[४]

सर्ग - १/श्लोक ६।।

इस महाकाव्य में कुछ श्लोक संस्कृत सुभाषितों की याद कराने वाले मिलते हैं। जैसें कि सुप्रसिद्ध श्लोक-

असम्भवं हेममृगस्य जन्म
तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले
धियोऽपि पुंसां मलिनिर्भवन्ति।।

इस श्लोक को षष्ठम् सर्ग के इक्कीसवें श्लोक में इस प्रकार व्यक्त किया है-

असम्भवं हेममृगस्य जन्म
तथाऽपि सीता लुलुभे मृगाय।
प्रायः समासन्न पराभवाणां
धियो विपर्यास्ततरा भवन्ति।।६/२१।।[५]

प्रस्तुत महाकाव्य की भूमिका में लिखा है; यह कथन सर्वथा सत्य है कि यदि एशिया की कोई एक कथा है तो वह रामकथा ही है। इस महाद्वीप के हर देश में इस ने अपना योगदान दिया है। थाईलेण्ड में यह रामकियन् (संस्कृत रूप रामकीर्ति) के रूप में पाई जाती है। यद्यपि आधारभूत कथा सभी एशियाई देशों में एक-सी ही है तो भी थाई रामकथा अन्य देशों की रामकथा से पर्याप्त भिन्न है। इसके अनेकानेक आख्यान और उपाख्यान अन्यत्र उपलब्ध न होने के कारण इसकी अपनी विशेषता है। प्रस्तुत महाकाव्य थाईदेश में उपलब्ध रामकथा को वर्णित करता है। इतना ही नहीं श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम् भारत के बाहर की रामकथा पर लिखा जाने वाला प्रथम महाकाव्य है। इस कृति के ऊपर अब तक विविध राज्यों के दशविध पुरस्कार मिल चुके हैं।

कवि डा. सत्यव्रतशास्त्री जी ने यहाँ पर विविध भावों को लेकर अपने महाकाव्य में वर्णन का आश्रय विविध छंदो में लिया है। जैसे कि बीसवें सर्ग में सीतानिर्वासन प्रसंग है तो वहाँ उन्होंने वियोगिनी छंद का विनियोग किया है जो विरह या दुःख के मनोभावों को प्रायः व्यक्त करता है देखिए-

प्रमदा जगति प्रमादिनी
रवलोक्यैव बुधान्यरुपयन्।
न हि प्रत्ययमासु कर्हिर्चित् तनुयात्

---

४. पृष्ठ - ५, रामकीर्तिमहाकाव्यम्, ले. - डा. सत्यव्रतशास्त्री, अनु. - मिथिलेशकुमारी मिश्र, प्रकाशन - ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष - १९९८

५. पृष्ठ ७० - रामकीर्तिमहाकाव्यम्, ले. - डॉ. सत्यव्रतशास्त्री, अनु. - मिथिलेशकुमारी मिश्र, प्रकाशन - ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली प्रकाशन वर्ष -१९९८

कोऽपि पुमान् विवेकवान्।।२०/३९।[६]

इस प्रकार थाईदेश की रामायण को अपने महाकाव्य रामकीर्ति में डा. सत्यव्रतशास्त्री जी ने पूर्णरूपेण सम्मिलित कर अपनी कविप्रतिभा का अनुठा परिचय दिया है। ओस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदाराबाद के संस्कृत अकादमी वोल्युम-१३ सन् १९९१ में प्रस्तुत महाकाव्य की स्तुति इस शब्दो में की गई है। "It is work no student of Sanskrit literature and Indian Culture would afford to miss.

इस के उपरांत श्री सिंघवी साहब लंडन में रहकर प्रस्तुत महाकाव्य की प्रशंसा इस प्रकार करते है। " Sri Ram Kitimahakavyam occupies a pride of phase in the India House Library" - L.M. Singhvi (London) तो गौहत्ती में रहने वाले विश्वनारायण शास्त्री भी लिखते हैं कि - "It is a monumental work"

आखिर में एक अवतरण जरूर देना चाहिए जो कि नई दिल्ही में 1991 में 19 अक्तूबर को हिंदुस्तान टाईम्स में इस कृति के बारे में मुद्रित हुआ था। "This is the first attempt of its kind to present a Sanskrit version in the traditional elegant Mahakavya Style of the Thai Ramakien (aptly translated Ramakiriti - glory of Rama)."

It would be quite intersting to undertake a project like " Innovations in Ramkatha as found in Thai and other South East Asian Traditions". And this fascinating and superb Sanskrit presentation by Satya Vrat would certainly go a long way towards facilitating such studies and providing thereby effective ties of cordial understanding and goodwill as well as cultural and educational closeness among most of the great countries of Asian Continent.

- अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, आद्र्स कालेज शामलाजी, पो. शामलाजी, ता. भिलोड़ा पीन- 383355

---

६. पृष्ठ ७० - रामकीर्तिमहाकाव्यम्, ले. - डॉ. सत्यव्रतशास्त्री, अनु. - मिथिलेशकुमारी मिश्र, प्रकाशन - ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली प्रकाशन वर्ष -१९९८

हृदयम् कथं हृदयम् = हृदय हृदय क्यों ?

- उपाध्याय डॉ. रामनारायणः शास्त्री

हृदय को हृदय क्यों कहते है ? इस पर विचारविमर्श करने से पूर्व हम हृदय शब्द की व्युत्पति, निर्वचन और निर्माण प्रक्रिया पर विचार करते हैं कि यह शब्द किस प्रकृति प्रत्यय से बना है और इसका अर्थ क्या है ? हरण = ग्रहण अर्थवाले हृ (हृञ् हरणे) धातु से औणादिक कयन् प्रत्यय साथ ही दुक् आगम करने पर हृदयशब्द बनता है।[1] हरति आहरति स्वीकरोतीति हृदयम्। उणादिसूत्रपाठ पर व्याख्यान करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती हृदय शब्द की निरुक्ति इस प्रकार लिखते हैं - **हरति विषयानिति हृदयम् मनो वा।**[2]

हृदय यह एक संज्ञा (नाम) वाचक शब्द है। बडे से बडे अर्थ को कम से कम शब्द अथवा एक शब्द में अभिव्यक्त करने वाले शब्द को संज्ञा कहते हैं। जिस शब्द के द्वारा अच्छी प्रकार से भलीभाँति विस्तृत अर्थ को संक्षेप से समझा जाता है उस शब्द को संज्ञा कहते हैं। **''संज्ञा च नाम यतो लघीयः''**। लोकव्यवहार संचालन तथा लघुता के लिए संज्ञा अथवा नामकरणसंस्कार किया जाता है। लघु को संज्ञा (नाम) और गुरु को संज्ञी (नामी = नामवाला) कहते हैं। मानव ही क्या किसी भी प्राणी के शरीर में जहाँ आत्मा (जीवात्मा और परमात्मा अर्थात् जीव ईश्वर) रहता है, निवास करता है उस स्थान का नाम हृदय है। हम सब प्राणियों के शरीर में हृदय नामक स्थान में हमारा जीव रहता है, इस सत्य तथ्य से साधारणजन भी परिचित है। इस विषय में शास्त्रीय प्रमाण भी उपलब्ध हैं। यथा -

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो
य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।।[3]
अणोरणीयान् महतो महीयानात्माऽस्य
जन्तो निहतो गुहायाम्
तमक्रतुः पश्यति वीताशोको धातुः
प्रसादान्महिमानमात्मनः।।[4]
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।[5]

इन उपनिषत् प्रमाणों से अन्य गीता में भी कहा है; ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में रहता है- **ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।**[6]

वैदिकसाहित्य में उपनिषद् नाम का एक ज्ञानसागर बहुत ही प्रसिद्ध है। उपनिषदों की सङ्ख्या शताधिक है। जो सामान्य पठन-पाठन में अथवा विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में

१. धातुपाठ, १.६४०। उणादिसूत्रपाठ ४.१०१।
२. उणादिसूत्रपाठ ४.१०१। पर दयानन्दवृत्ति।
३. श्वेताश्वतरोपनिषद् ३.१३
४. कठोपनिषद् २.२०। तुल. श्वेताश्वतरोपनिषद् ३.२०
५. कठोपनिषद् ६.१७।
६. भगवद्गीता १८.६१

निर्धारित हैं और जिन पर संस्कृत तथा आर्यभाषा (हिन्दी) में भाष्य उपलब्ध हैं; उन सर्वमान्य उपनिषदों की सङ्ख्या एकादश = ग्यारह है। इन उपनिषदों में छान्दोग्य तथा बृहदारण्यकोपनिषद् में हृदय शब्द की व्याख्या प्राप्त होती है। जहाँ हृदय को हृदय क्यों कहते हैं? इस प्रश्न का समाधान मिलता है। छान्दोग्योपनिषत् का कथन है - यह आत्मा हृदय में है। हृदय को हृदय कहते भी इसलिए है क्योंकि हृदि अयम् = हृदय में यह है। जो इस रहस्य को दिन-प्रतिदिन जानता है वह उसे बाहर देखने के स्थान पर अन्दर = हृदय के अन्दर ही देखता है; खोजता है और वही मानो स्वर्ग को पा लेता है = प्राप्त कर लेता है। स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तं हृद्यमिति तस्माद् हृदयम् अहरहर्वा एवंवित् स्वर्गं लोकमेति।[७] यहाँ मूल वाक्य में यह लिखा अवश्य है कि **तस्यैतदेव निरुक्तं हृदि अयमिति** पर हम जिस प्रश्न को लेकर प्रवृत्त हुए हैं कि **हृदय को हृदय क्यों कहते है** उसका उत्तर अभी समझ में नहीं आया। अस्तु, जब समाधान पाने के लिए चले हैं तो लक्ष्य प्राप्त से पूर्व विराम कैसा और क्यों ?

आइये अब बृहदारण्यकोपनिषद् को समझने का प्रयत्न करते हैं। बृहदारण्यक के ऋषि बहुत ही गम्भीर, सरल और प्रभावी ढंग से समझा रहे हैं; उनका कहना है कि हृदय यह तीन अक्षरों वाला एक संज्ञा शब्द है, नाम है। हृ यह एक अक्षर है। **हृञ् हरणे** धातु से बना है, इसका अर्थ हरण = अभिहरण =लाना। जो इस रहस्य को समझ लेता है कि हृदय ही प्रजापति है, हृदय ही ब्रह्म है, हृदय ही सब कुछ है, उसके सामने अपने और पराये सबलोग उपहार अभिहरण कर लाकर रखते हैं। द यह दूसरा अक्षर है। **दा दाने धातु** से बना है इसका अथ है देना। जो यह समझ लेता है कि हृदय ही प्रजापति है, हृदय ही ब्रह्म है हृदय ही सबकुछ है, उसके लिए सबलोग देते ही देते हैं। य यह तीसरा अक्षर है। **इण् गतौ** अथवा **या गतौ प्रापणे च** धातु से बना है, इसका अर्थ है गति। गति अर्थात् जानना, जाना और प्राप्त करना। जो व्यक्ति हृदय सम्बन्धी इस रहस्य को समझ लेता है वह स्वर्ग लोक को जानकर उसे प्राप्त कर लेता है। **एष प्रजापतिर्यद् हृदयमेतद् ब्रह्मैतत्सर्वं तदेतत् त्र्यक्षरं हृदयमिति; हृ इत्येकमक्षरम् अभिहरन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद। यमित्येकमक्षरमेति स्वर्गं लोक य एवं वेद।**[८] हृदय लेता है, देता है और गति करता है, उद्देश्य को सफलता को प्राप्त करता है; यह बात समझ में आई। हृदय द्वारा लेना देना रक्त का होता है। हृदय शरीर के अशुद्ध रुधिर को लेकर फेफड़ों द्वारा शुद्ध कर शरीर को देता है और इसी उद्देश्य से सदा गतिमान् रहता है और अपनी इस (आदान प्रदान व गति की) प्रक्रिया से अपने उद्देश्य में अर्थात् शरीर को स्वस्थ, प्रसन्न तथा जीवित रखने में सफल होता है।

इस भाँति हमने जाना, समझा कि हृदय आदान-प्रदान एवं निरन्तर गति के कारण अपने उद्देश्य में सफलता को प्राप्त करता है इसलिए हृदय को हृदय कहते हैं।

अब हम यह जानने समझने का प्रयत्न करते हैं कि वैदिक वाङ्मय में किन-किन तत्त्वों को हृदय नाम (संज्ञा) से अभिहित किया गया है,

---

७. छान्दोग्योपनिषद् ८.३.३। छान्दोग्यब्राह्मण २.९.३३

८. मा. श. ब्रा. ९.१.२.४०। का. श. ब्रा. ११.३.३.३१

कहा गया है? और साथ में समझने का प्रयास करेंगे कि हृदय की परिभाषा हृदय को हृदय कहने का कारण; जो हमने समझा क्या वे तत्त्व उस प्रक्रिया में सफल हैं? इस विचार-विमर्श में पहला वाक्य है - **असौ वा आदित्यो हृदयम्।**[९] परिभाषा के अनुसार आदान-प्रदान और गति हृदय का कार्य है। हम सब यह भाली भाँति जानते हैं कि आदित्य अर्थात् सूर्य किरणों के द्वारा वसुधा से जल लेता है और मेघ = बादलों के द्वारा पुनः हजारगुणा करके दे देता है। सूर्य की गति को भी उत्तरायण और दक्षिणायन के नाम से सब जानते हैं; जिसके कारण अहोरात्र (दिनरात) मास, वर्ष का निर्माण होता है अर्थात् महीने और वर्ष बनते हैं। यह आदित्य =सूर्य के विषय में सर्वसाधारणज्ञात तथ्य है। अब हम आदित्य के आदान-प्रदान के विषय में शास्त्रीय प्रमाण उद्धृत कर रहे हैं। निरुक्तकार महर्षि यास्क का कथन है कि आदित्य अपनी किरणों से जल को स्वीकारता है और फिर वर्षाकर गिराता अर्थात् देता है पुनः लेता है यह प्रक्रिया निरन्तर बनी रहती है इसी कारण आदित्य को आदित्य कहते हैं - **गूहते बुसम। बुसमित्युदकनाम। गूहते संवृणोति। यद् वर्षन् पातयत्युदकं रश्मिभिस्तत् प्रत्यादत्ते।**[१०] कविकुलगुरु महाकवि कालिदास रघुवंश महाकाव्य के प्रारम्भ में कहते हैं कि रवि = आदित्य हजारगुणा बनाकर लौटाने के लिए ही रस = जल को लेता है - **सहस्रगुणमुत्स्रष्टुं हि रसमादत्ते रविः।**[११] इस तरह आदित्य परिभाषा के अनुसार आदान-प्रदान और गति की क्रिया से अपने उद्देश्य में सफल है इसीलिये ब्राह्मणग्रन्थ आदित्य को हृदय कह रहे हैं।

प्राणो वै हृदयमतो ह्ययमूर्ध्वः प्राणः संचरति।[१२] इस वाक्य में प्राण को हृदय कहा है। आहरण-वितरण और गति इस लक्षण के आधार पर हृदय को हृदय कहा गया है। प्राण की प्रक्रिया से भी सभी परिचित है। यह निरन्तर चलता रहता है। यह भी कहा जा सकता है कि इसी के कारण हृदय निरन्तर गतिशील रहता है। प्राण सभी प्राणियों को जीवनदायी वायु देता है और जीवन के लिए हानिकारक वायु को अपान के द्वारा बाहर निकालता है। मानवशरीर को प्राणवायु (ऑक्सीजन) प्राण के द्वारा प्राप्त होती है कॉर्बन = हानिकारक वायु भी प्राण से बाहर होती है यह इसका आहरण-वितरण का कार्य है। प्राण अपान, व्यान, समान और उदान ये पाँच प्राण के नाम से तथा नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ये पाँच उपप्राण के नाम से हमारे शरीर में आदन-प्रदान, समान वितरण का कार्य करते हैं। इस कारण शरीर नीरोग रहता है इनमें से किसी एक के कार्य में बाधा आने से शरीर अस्वस्थ हो जाता है। जहाँ तक प्राण की गति का प्रश्न है प्राण अहर्निश चलता ही रहता है। यहाँ तक कि शयनावस्था में शरीर और शरीरस्थ सभी इन्द्रियों के सोने पर भी प्राण अपने कार्य में निरन्तर लगा रहता है यह कभी सोता नहीं है। ऊपर अथवा नीचे की ओर किसी भी दिशा में गति करता हुआ प्राण केन्द्र में रहता है। शरीर का केन्द्र नाभि होने से नाभि ही प्राणों को धारण करती है - नाभिर्वै

---

९. बृ.उ.५.३.१। मा.श.ब्रा.१४.८.४.१। का.श.ब्रा.१७.५.३.१

१०. ५.३.७ ११. रघुवंशमहाकाव्यम् १ १२. मा.श.ब्रा.३.८.३.१५।

प्राणान् दाधार ये चोर्ध्वा ये चार्वाञ्चः।[13] नाभि के साथ हृदय को भी शरीर का केन्द्र या नाभि कहा जाता है अतः नाभि प्राणों को धारण करती है पर प्राण हृदय में आश्रित रहते हैं - **प्राणो हृदये श्रितः।**[14] इन सभी कारणों से वैदिकवाङ्मय में प्राण को हृदय कहा गया है।

आत्मा हृदयम्[15]। आत्मा वै मनो हृदयम्[16]। इन वाक्यों में आत्मा तथा मन को हृदय कहा है। आत्मा हृदय में रहता है यह तथ्य हम प्रारम्भ में ही उपनिषद् प्रमाणों से स्पष्ट कर आये हैं। तैत्तिरीयब्राह्मण का भी कथन है कि आत्मा हृदय में रहता है- आत्मा हृदये श्रितः[17]। मन का निवास भी यह ब्राह्मण हृदय में मानता है - मनो हृदये श्रितम्[18]। मन इन्द्रियों से विषयों को ग्रहण करता है तथा बुद्धि और आत्मा को देता है इसलिए मन को हृदय कहा है। ऐतरेयारण्यक हृदय और मन दोनों को एक मानते हुए कहता है कि ये सब प्रज्ञान के नाम हैं - यदेतद् हृदयं मनश्चैतत्संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्भूतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सर्वाण्येतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति[19]। इनके अतिरिक्त बाह्यपदार्थों में पुत्र को भी वैदिकसाहित्य हृदय कहता है - **पुत्रो हि हृदयम्**[20]। आदान-प्रदान लक्षण के अनुसार पुत्र भी माता-पिता से संस्कृति सभ्यता परम्परा और भौतिकसम्पदा को ग्रहण करता है तथा स्वयं पिता बनकर अपनी सन्तति को वितरित कर देता है और इस प्रक्रिया में आजीवन चलता ही रहता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कारविधि में जातकर्मसंस्कार में लिखा है। सन्तान को आशीर्वाद देते हुए पिता इन मन्त्रों को बोले, यह लिखकर तीन मन्त्र लिखें हैं उनमें से मध्यम मन्त्र हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं-

अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधि जायसे। वेदो वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्[21]।। इस भाँति इन सबको लक्षण के अनुसार हृदय कहा है। इस तरह हृदय को हृदय क्यों कहते हैं? यह हमने इस आलेख में समझने का प्रयास किया है।

- हविर्धानम् ए 30, राजबाग, सूरसागर, जोधपुर - 342024 (राजस्थान)

१३. काठकसंहिता ३७.१६
१४. तै. ब्रा. ३.१०.८.५। तुल. शांखायनारण्यक ११.६
१५. तै.ब्रा. ३.१०.८.१०। मैत्रायणी संहिता ३.१०.२
१६. मा. शङ ब्रा. ३.८.३.८।
१७. तै. ब्रा. ३.१०.८.९
१८. तै. ब्रा. ३१०.८.६
१९. ऐतरेयारण्यक २.६.१
२०. तैत्तिरीयब्राह्मण २.२.७.४
२१. संस्कारविधिः जातकर्मसंस्कार। तुल. बृह. उप. ६.४.६

शाक्तागम में कुण्डलिनी योग का स्वरूप

- डॉ. योगेश प्रसाद पाण्डेय

कुण्डलिनी योग - शाक्तागाम में प्रत्यक्ष रूप से अष्टांग योग का वर्णन प्राप्त न होने पर भी परोक्ष रूप से इस विधि को समर्थन देते हैं। कुण्डलिनी योग की विधि वर्णन प्रसंग में कहते हैं कि यम और नियम के नित्य, नियमित आदरपूर्वक निरन्तर अभ्यास में लगा योगी साधक गुरुमुख से मूलाधार से सहस्रार-पर्यन्त कुण्डलिनी के उत्थापन क्रम को ठीक से समझ लेने का उपरान्त पवन और दहन के आक्रमण से प्राप्त कुण्डलिनी शक्ति को जो कि स्वयम्भू लिंग को वेष्टित कर सार्धत्रिवलयाकार में अवस्थित है, हूँकार बीज का उच्चारण करते हुए जगाता है और स्वयंभू लिंग के छिद्र से निकालकर उसे ब्रह्मद्वार तक पहुँचा देता है। कुण्डलिनी शक्ति पहले मूलाधार स्थिर स्वयम्भू लिंग का, तब अनाहत चक्र स्थित बाण लिंग का और अन्त में आज्ञाचक्र स्थित इतर लिंग का भेद करती हुई ब्रह्मनाडी की सहायता से सहस्रदल चक्र में प्रविष्ट होकर परमानन्दमय शिवपद में प्रतिष्ठित हो जाती है। योगी अपने जीव भाव के साथ इस कुण्डलिनी को मूलाधार से उठाकर सहस्रार चक्र तक ले जाता है और वहाँ उसको परबिन्दु स्थान में स्थिर शिव (पर लिंग) के साथ समरस कर देता है। समरस भगवापन्न यह कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार चक्र में लाक्षा के वर्ण के समान परमामृत का पान कर तृप्त हो जाती है और इस परमानन्द की अनुभूति को मन में संजोये हुए वह पुनसः मूलाधार चक्र में लौट आती है। यही है कुण्डलिनी योग की इतिकर्तव्यता। इसके सिद्ध हो जाने पर योगी जीवभाव से मुक्त हो जाता है और शिवभावापन्न (जीवन्मुक्त) हो जाता है।

कुण्डलिनी शक्ति कैसे सहस्रार स्थित अकुलशिव की ओर उन्मुख होती है और वहाँ शिव के साथ सामरस्य भाव का अनुभव कर पुनः कैसे अपने मूल स्थान में आ जाती हैं।[1] इसी प्रकार चार पीठों (क्षिति, पवन, जल एवं अग्निमण्डल) और चार लिङ्गों (स्वयम्भू, बाण, इतर और परम) का स्वरूप हमें योगिनीहृदय में स्पष्ट रूप में मिलता है।[2]

कुण्डलिनी शक्ति- यह मानवलिंग शरीर में सुषुम्नाडीके सहारे ३२ पदों की स्थिति मानी गयी है। सबसे नीचे और सबसे ऊपर के सहस्रारपद्म स्थित है। नीचे कुलकुण्डलिनी में स्थित अरुण वर्ण सहस्रार पद्म ऊर्ध्वमुख तथा ऊपर ब्रह्मरन्ध्र स्थित श्वेत कर्ण सहस्रारपद्म अधोमुख हैं। इनमें

१. नित्याशोडषिकार्णव, ४/१२-१६
२. योगिनीहृदय, पटल-१, चक्र संकेत, श्लोक सं. ४१-४७

से अधः सहस्रार को कुलकुण्डलिनी और ऊर्ध्व सहस्रार को अकुलकुण्डलिनी कहा जाता है। अकुलकुण्डलिनी प्रकाशात्मक आकार स्वरूपा और कुलकुण्डलिनी विमर्शात्मक हकार-स्वरूपिणी मानी जाती है।

इन दो कुण्डलिनियों के अतिरिक्त तंत्र शास्त्र के ग्रन्थों में प्राणकुण्डलिनी का भी वर्णन मिलता है। मूलाधार में जैसे कुण्डलिनी का निवास है, उसी तरह से हृदय में भी 'सार्धत्रिवलया प्राणकुण्डलिनी' रहती है। मध्यनाडी सुषुम्ना के भीतरचिदाकाश (बोधगमन) रूप शून्य का निवास है। उससे प्राणशक्ति निकलती है। इसी को अनच्क कला भी कहते हैं। इसमें अनच्क (अच् = स्वर से रहित) हकार का निरन्तर नाद होता रहता है। यह नाद भट्टारक की उन्मेष दशा है, जिससे कि प्राणकुण्डलिनी की गति ऊर्ध्वोन्मुख होती है, जो श्वास-प्रश्वास, प्राण-अपान को गति प्रदान करती है और जहाँ इनकी एकता का अनुसन्धान किया जा सकता है। मध्य नाडी में स्थित बिना क्रम के स्वाभाविक रूप से उच्चरित होने वाली यह प्राणशक्ति ही अनच्क कला कहलाती है। इस अनच्क कला रूप प्राणशक्ति कुण्डलिनी इसलिए हैं कि मूलाधार स्थिर कुण्डलिनी की तरह इसकी भी आकृति कुटिल होती है। जिस प्राणवायु का अपान अनुवर्तन करता है, उसकी गति हकार की लिखावट की तरह टेढ़ी-मेढ़ी होती है। प्राणशक्ति अपनी इच्छा से ही प्राण के अनुरूप कुटिल (घुमावदार) आकृति धारण कर लेती है। प्राण शक्ति की यह वक्रता (कुटिलता = घुमावदार आकृति) परमेश्वर की स्वतंत्र इच्छा शक्ति का खेल है। प्राण शक्ति का एक लपेटा वामनाडी इडा में दूसरा लपेटा दक्षिण नाडी पिंगला में रहता है। इस तरह से इसके दो वलय (घेरे) बनते हैं। सुषम्ना नाम की मध्य नाडी सार्ध कहलाती है। इस प्रकार यह प्राणशक्ति भी सार्धत्रिवलया है। वस्तुतः मूलाधार स्थित कुण्डलिनी में ही प्राणशक्ति का निवास है, किन्तु हृदय में इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति होने से ब्राह्मणवसिष्ठ न्याय से उसका यहाँ पृथक् उल्लेख कर दिया गया है। इसका प्रयोजन अजपा (हंस गायत्री) जप को सम्पन्न करना है।

प्रवृद्धवह्निसंयोगमनसामरुतः सह।
ऊर्ध्वं नयेत् कुण्डलिनीं जीवात्मसहितां परम्।।
गच्छन्ति ब्रह्मरन्ध्रेण भित्वा ग्रन्थिं चतुर्दशः।
षट्चक्र-सन्धिमार्गेण सुषुम्ना वर्त्मना तथा
हंसेन मनुना देवीं सहस्रारं समानयेत्।
सदाशिवो महादेवो यत्रास्ते परमेश्वरि।
तत्र गत्वा महादेवि कुण्डली परदेवता।।[3]

अर्थात् वायु के साथ महावह्नि के संयोग से वह जैसे पर गमन करता है। उसी प्रकार साधक मन के द्वारा देवता कुण्डलिनी शक्ति को जीवात्मा के साथ ऊर्ध्व में (ऊपर) सहस्रार पद्म में ले जाता है। ब्रह्मरन्ध्र पथ में (रास्ते में) गमनकारिणी शक्ति को ग्रन्थि (स्वयम्भू, बाण

३. शाक्तानन्दतरङ्गिणी, सं ७२-७४[१/२]

तथा इतराख्य लिङ्गत्रय षट्चक्र तथा पञ्चशिव) भेद करके षट्चक्र सन्धि स्थान स्थित सुषुम्ना पथ में हंस मंत्र के साथ सहस्रार पद्म में आनयन करना। यहाँ महादेव सदाशिव अवस्थान करते हैं। रूपवती परदेवता कुण्डलिनी देवी उसी स्थान में गमन करके कामसमुल्लास विहारिणी होकर मुखपद्म के गन्ध के द्वारा आमोदित (आनन्दित) परम शिव को जगा कर सदाशिव की गोदी में बैठती है। कुण्डलिनी शक्ति शिव के मुखपद्म का चुम्बन करती हैं। उस क्रीड़ा से अमृत उत्पन्न होता है।

साधक उस अमृत के द्वारा परदेवता का तर्पण करेंगे। सुधी साधक वहाँ पर अमृत धारा के द्वारा षट्चक्र देवता का तर्पण करके कुण्डलिनी शक्ति को उस (रास्ते से) पुनरायन मूलाधार में आनयन करेंगे। साधक जाने आने के क्रम से ब्रह्म में मन स्थिर करेंगे। यही है योनिमुद्रा बन्धन (जन्म-नाशक) इसे परम योग कहा गया है। वहीं यामल तंत्र में कहा है कि - 'कुलवधू जिस प्रकार कुल का परित्याग करके पुन: कुल में आगमन करती है' उसी प्रकार अव्यक्ता कुण्डलिनी (मूलाधार से प्रत्यावर्तन करके) एकाकिनी (अकेला) अवस्थान करती है। संकेत पद्धति में कहा गया है - 'कुण्डलिनी शक्ति पिण्ड एवं पद हंस कह कर कीर्तित हुए हैं; रूप से समझकर एवं रूपातीत को निष्कल ब्रह्म समझना चाहिए।

इस प्रकार षट्चक्र भेद की रीति के अनुसार कुण्डलिनी शक्ति को सहस्रदल पद्म में लेकर उस सहस्रदल पद्म स्थित सदाशिव के साथ मिलाकर उस मिलन जनित अमृत के द्वार पर देवता तथा षट्चक्र स्थित शिव शक्ति आदि को आप्लावित करके 'सोऽहं' मन्त्र के द्वारा पुन: स्वस्थान में (मूलाधार) में आनयन करना (लाना) यही है वाक्यार्थ, क्योंकि यामल तन्त्र के द्वारा कुण्डलिनी का आनयन करेंगे।[४]

यहाँ पर शंकर जी सन्देह निवारण करते हुए यह कहते हैं कि - शब्दब्रह्ममय परब्रह्मस्वरूप उस पद्म समूह सुषुम्ना नाड़ी के अभ्यन्तर में अवस्थित है। वे सभी पद्मसमूह सर्वतोमुख है अर्थात् ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख है। प्रवृत्ति तथा निवृत्ति नामक दोनों भाव जीव के हृदय में अवस्थान करते हैं। प्रवृत्ति मार्ग संसार है और निवृत्ति मार्ग परमात्मा है। प्रवृतिमार्ग के चिन्ता से पद्मसमूह का अधोमुख चिन्तन करना तथा निवृत्ति रूप योग मार्ग में इन पद्म समूह को सदा-सर्वदा ऊर्ध्व मुख चिन्तन करना है। इस कुण्डलिनी योग का शास्त्रान्तरों में विभिन्न प्रकार से वर्णन प्राप्त है।[५]

तन्त्रागमीय साधनायें मुख्यत: शक्ति की ही साधनायें हैं। चाहे वह वैष्णव हो अथवा शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, जैनतन्त्र और बौद्ध तन्त्र क्यों न हो इन सभी में साधनाओं का मुख्य केन्द्र या उनको उत्प्रेरक प्राणसूत्र इन्द्रियातीत दिव्य

४. शाक्तानन्दतरङ्गिणी, श्लोक सं. ७५-८३

५. वही, चतुर्थ उल्लास, श्लोक सं. १००-१४०

शक्तियाँ प्राप्त करना ही रहा है। इस विधा में कुण्डलिनी व साधना शक्ति की ही साधना है। कुण्डलिनी अकुल (परमशिव) की निज शक्ति है, जो कि सर्पाकार होकर पाताल (मूलाधार) चक्र में ब्रह्मरन्ध्र नामक ब्रह्मद्वार को अपने कलाग्र भाग से अवरुद्ध करके अवस्थित है-

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनीनाम विसतन्तुनिभाऽशुभा।[६]

कुण्डलिनी की साधना शक्ति-साधनाओं में सर्वोच्च साधना है। परमशिव स्वयं अपनी इसी शक्ति से शक्तिमान कहलाते हैं, फिर इससे बड़ी शक्ति की अन्य साधना क्या हो सकती ? कुण्डलिनी ही सृष्टि है, कुण्डलिनी ही जगत् है, कुण्डलिनी ही जगत् की समस्त शक्तियों का मूलाधिष्ठान है, इससे कुण्डलिनी की साधना ही शक्ति उच्चतम साधना है।

शाक्तागम में कुण्डलिनी शक्ति और उसका स्वरूप - १. वह चैतन्यरूपा है। २. सर्वानुस्यूत एवं सर्वगा है। ३. विश्वरूपा है। ४. शिव का सन्निधान प्राप्त करके नित्य आनन्द एवं सत्त्वादि गुणत्रय को आविर्भूत करने वाली है-

ततश्चैतन्यरूपा सा सर्वगा विश्वरूपिणी।
शिवसन्निधिमासाद्य नित्यानन्दगुणोदया।।[७]

५. दिशा-काल से अतीत है। ६. सर्वदेहानुगा है। ७. परापर विभाग से पर शक्ति कहलाती है। ८. योगियों के हृदय में तत्त्वतः नृत्य करती रहती है। समस्त प्राणियों के मूलाधार चक्र में विद्युत की भाँति सदैव स्फुरित होती रहती है। १०. संखावर्त के समान सभी को आवृत्त करके अवस्थित है। ११. कुण्डली भूत सर्प के आकार वाली है। १२. सर्वदेवमयी एवं सर्वमन्त्रमयी है। १३. सर्वतत्त्वमयी है। १४. सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर एवं विभु है। १५. त्रिधाम (पृथ्वी-पाताल-स्वर्ग) की जननी है। १६. वह शब्दब्रह्म रूपा है-

सर्वदेवमयी देवी सर्वमन्त्रमयी शिवा।
सर्वतत्तमयी साक्षात् सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरा विभुः।
त्रिधामजननी देवी शब्दब्रह्मस्वरूपिणी।।[८]

१७. ४२ वर्णों वाली भूतलिपिमयी है। १८. ५० वर्ण मातृकास्वरूपा है।

द्विचत्वारिंशद्वर्णात्मा पञ्चाशद्वर्णरूपिणी।[९]

१९. वह समस्त शरीरों में गुणित (अनेक रूपों में प्रसृत) होकर विद्यमान या व्याप्त है। २०. वह परादेवता है। २१. वह परादेवतास्वरूपा कुण्डलिनी सभी प्रकार से प्रबुद्ध होकर मन्त्रमय इस जगत् को आविर्भूत किया करती है।

विश्वात्मना प्रबुद्ध्वा सा सूते मन्त्रमयं जगत्।[१०]

२०. शब्दार्थ रूप से निःशेष विश्व की जननी वह भगवती कुण्डलिनी परादेवता जब एक गुणित संख्या में रहती है तो वह वेद का आदि बीज = ॐ (ओंकार), श्री बीज (श्रीं), शक्तिबीज (ह्रीं),

---

६. भारतीय शक्ति साधना, वामकेश्वरतंत्र, पृ. ४८७
७. शारदातिलक, पटल एक, श्लोक सं. ५१
८. वही, पटल एक, श्लोक सं. ५५१/२
९. वही, पटल एक, श्लोक सं. ५६
१०. वही, पटल एक, श्लोक सं. ५७

मनोभव बीज (क्लीं), प्रासाद, तुम्बरु, पिण्ड, चिन्तामणि विनायक का, मार्तण्ड, भैरव, दुर्गा, नरसिंह, वराह, वासुदेव, हयग्रीव एवं श्री पुरुषोत्तमबीज एवं इसी प्रकार अन्य एकाक्षर मन्त्रों (यथा-चन्द्रबीज, बिम्बबीज) को आविर्भूत करती है।

जब वह ज्ञानस्वरूपा कुण्डलिनी द्विगुणित विग्रहा (दुगुने कलेवरों वाली) हो जाती है तब वह परमात्मा के वाचक 'हं' एवं 'स:' वर्णों को शब्द और अर्थ को, दिन और रात्रि को तथा प्रकृति एवं पुरुष को आविर्भूत करती है।

वह जगत् के समस्त युग्म पदार्थों को जन्म देती है। जब वह कुलशक्ति त्रिगुणित (तिगुने शरीर वाली) होती है, तब वह त्रिपुरामन्त्र, शक्ति विनायक मन्त्र, पाशादि त्र्यक्षर मन्त्र, त्रैपुर चण्डेश्वर मन्त्र, सौरमन्त्र, मृत्युञ्जयमन्त्र, शक्त्योद्भूत-मन्त्रद्वय, गारुड़मन्त्र, वागीश्वरी त्र्यक्षर मन्त्र, नीलकण्ठ के विषहारी त्र्यक्षर मंत्र, देवी के त्रिगुणित यन्त्र, लोकत्रय, गुणत्रय, धामत्रय, वेदत्रय, वर्णत्रय, तीर्थत्रय, स्वरत्रय, देवत्रय, देवीत्रय, अग्निलय शक्तित्रय, कालत्रय, वृत्तित्रय, नाड़ित्रय, वर्गत्रय तथा इनके अतिरिक्त शेष (दोषत्रय आदि) की भी उद्भाविका या जननी है।

वही महाशक्ति (कुण्डलिनी) से मिलकर जीव को पूर्णत्व प्रदान करती है। जैसा कि-

मंत्री मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।।[11]

तथैव-

मनस्तत्त्वं जित्वा नयनमथ नासाग्रघटितं
पुनर्व्यावृत्ताक्ष स्वयमपि यदा पश्यति पराम्।
तदानीमेवास्य स्फुरति बहिरन्तर्भगवती
परानन्दकारा परशिवपरा काचिदपरा।।[12]

जब सर्वकल्याणकारिणी शाम्भवी कुण्डलिनी चतुर्गुणित (चौगुनी) बनती है तब वह सूर्य के प्रणव, माया, हं एवं इस प्रकार चार अक्षरों में व्यक्त होती है।

वह महालक्ष्मी के चतुरक्षर मन्त्र, देवी के तत्त्वचतुष्टय (आत्मतत्त्व, विद्या तत्त्व, शिवतत्त्व एवं सर्वतत्त्व), चतु: समुद्र अन्त: करणचतुष्टय, वाक्यचतुष्टय (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी), भावचतुष्टय, गणेचतुष्टय, आत्मचतुष्य, पीठचतुष्टय (उड्डीयान, जालन्धर, पूर्णागिरी, कामरूप), धर्मादिचतुष्टय (पुरुषार्थचतुष्टय), दमादिचतुष्टय, (शम, दम, तितिक्षा, उपरति), गजचतुष्टय तथा अन्य चतुष्टय (यथा सिद्ध, मण्डल, दीक्षा, हेरम्ब मन्त्रा, देवी, दूती एवं बीजचतुष्टय आदि) को उत्पन्न करती है।[13]

इसी प्रकार भगवती कुण्डलिनी पञ्चगुणित, षड्गुणित, सप्तगुणित, अष्टगुणित, नवगुणित, दशगुणित, एकादशगुणित, द्वादशगुणित एवं द्वात्रिंशद्भेदगुणित होकर स्वस्वरूप को व्यक्त

११. सौन्दर्यलहरी, श्लोक सं. ९
१२. सुभगोदयस्तोत्र, श्लोक सं २
१३. शारदातिलक, पटल एक, श्लोक सं. ५८-७१

करती है।[१४] भगवती कुण्डलिनी अपने को छत्तीस स्वरूपों में अभिव्यक्ति करके शिव सम्बन्धी छत्तीस तत्त्वों को प्रकट करती है और छत्तीस मंत्रों एवं मन्त्रसमुदाय को निर्मित करती है। जैसा कि-

अनेन क्रमयोगेन गुणिता शिववल्लभा।
षट्त्रिंशतञ्च तत्त्वानां शैवानां रचयत्यसौ।।
अन्यान् मन्त्रांश्च यन्त्राणि शुभदानि प्रसूयते।
द्विचत्वारिंशता मूले गुणिता विश्वनायिका।।[१५]

वही विश्वनायिका, शब्दब्रह्ममयी, सर्वव्यापिका कुण्डलिनी शक्ति जब मूल में बयालीस गुना रूप धारण करती है तब उसकी सृष्टि का क्रम इस प्रकार होता है-

शक्ति-ध्वनि-नाद-निरोधिका-अर्ध्देन्दु-बिन्दु-परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी।[१६]

जगन्माता शब्दब्रह्मस्वरूपा कुण्डलिनी-
चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मतिः।
तत् प्राप्य कुण्डलीरूपां प्राणिनां देहमध्यगम्।
वर्णात्मनाऽविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः।।

भारतीय साधना और संस्कृति में योग के विविध आयामों में कुण्डलिनी साधना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थूलतम आधार से शुरू होकर सूक्ष्म से सूक्ष्म होती हुई सूक्ष्मातिसूक्ष्म का अतिक्रमण कर परम सत्य तक पहुँचती है कुण्डलिनी साधना अपने विकास की ऊँचाइयों, योग के अनेक आयामों और विविध प्रक्रियाओं को अपने में समाहित कर लेती है। इसलिए इस साधना को सिद्धयोग और महायोग कहते हैं। कुण्डलिनी साधना आन्तरिक रूपान्तरण और आन्तरिक जागरण की एक विशेष वैज्ञानिक प्रक्रिया है। जिसका परिणाम है- परम शान्ति, परम आनन्द और परम सुख।

- पूर्व अनुसन्धाता, वैदिकदर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 05

---

१४. शारदातिलक, पटल एक, श्लोक सं. ५५-१०८
१५. वही, पटल एक, श्लोक सं. १०९-११०
१६. वही, पटल एक, श्लोक सं. १११-११२

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

रामायणकालीन कृषि-विज्ञान की वर्तमान समय में प्रासंगिकता

- डॉ. चन्दा कुमारी

प्राचीनकाल से ही किसी भी समाज का मेरुदण्ड वहां की आर्थिक-व्यवस्था होती है। उल्लेखनीय है कि भारत हमेशा से ही कृषिप्रधान देश रहा है। यहां की आर्थिक-व्यवस्था को सुदृढ रखने में कृषि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उल्लेखनीय है कि हिन्दू-सभ्यता को सर्वांगपूर्ण कहा गया है और इसका एक कारण कृषि-व्यवस्था है और इसी कारण हमारी भूमि सुजलाम् सुफलाम् कही गई है। नवपाषाण काल में जब-जब मानव यायावर-जीवन त्याग कर स्थायी निवास बनाकर रहने लगा तो इसका महत्त्वपूर्ण कारण कृषि ही था क्योंकि कृषि के लिए स्थायी जीवन आवश्यक होता है। घुमक्कड जीवन से सभ्यता की ओर अग्रसर होने पर मानव ने सर्वप्रथम जो व्यावसायिक रूप ग्रहण किया वह एक कृषक का ही था। वैदिककाल में ही कृषि ने भारत में एक विशेष उद्योग का स्थान प्राप्त कर लिया था और इसी समय से ही कृषि की उन्नति के लिए अनेक देवी-देवताओं की उपासना होने लगी।

पुरा वानस्पतिक शोध से यह ज्ञात हुआ है कि वेदों और महाकाव्यों में वर्णित खेती से सम्बन्ति कई पेंड़-पौधे और जड़ी-बूटियाँ भारत में विगत आठ से दस हजार वर्षों से लगातार विद्यामान हैं। भारत में ऋग्वैदिक काल से ही कृषि पारिवारिक उद्योग रहा है ओर उसका बहुत हद तक अनुगमन आज तक हो रहा है। ऋग्वेद के अनुसार - **अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः**। पराशर स्मृति में कहा गया है- **कृषिर्धन्याः कृषिर्मेध्या जन्तूनां जीवनं कृषिः**। अर्थात् कृषि सम्पत्ति और मेधा प्रदान करती है तथा कृषि ही जीवन का आधार है।

वैदिककाल के पश्चात् रामायण दुनिया का सबसे पहला महाकाव्य है और इस अद्भुत महाकाव्य का न केवल धार्मिक अपितु आध्यात्मिक महत्त्व भी है। इससे हमें उस काल की आर्थिक गतिविधियों रहन-सहन, खान-पान एवं भूगोल का पता चलता है। यही कारण है कि भारत की विचारधारा तथा साहित्य को सहस्रों वर्षों तक अन्य किसी भी ग्रंथ की अपेक्षा रामायण ने अत्यधिक प्रभावति किया है।

जब हम रामायण का अध्ययन करते हैं तब का जीवनदर्शन हमारे सामने प्रस्तुत हो जाता है और तब के लोगों की सभ्यता और संस्कृति की झलक हम इस महाकाव्य में अनुभव कर सकते हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय में कथित अर्थ मानव-जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है और इसके स्रोत के रूप में कृषि, पशुपालन आदि व्यापार को स्वीकार किया जा सकता है।

रामायणकालीन आजीविका का मुख्य साधन कृषि था और कृषि व्यवस्था पूर्ण रूप से सुसम्पन्न थी। अयोध्यापुरी की समृद्धि का द्योतक श्रीराम का यह कथन द्रष्टव्य है-

इयं सराष्ट्रा सजना धनधान्यसमाकुला।

मया विसृष्टा वसुधा भरताय प्रदीयताम्।।[1]

इसी प्रकार वनवास में समीपस्थ ग्रामों की जुती हुई भूमि का वर्णन **ग्रामान् विकृष्टसीमान्तान्**[2] तथा धनधान्य सम्पन्न कोशल को लाँघना- **ततो धान्यधनोपतान्**[3] और राम का अनुगमन करते हुए अयोध्यावासियों द्वारा उद्यान और खेत आदि का वर्णन कृषि की परिपक्व अवस्था को बताते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक जनपदों का उल्लेख मिलता है जो धान्य-सम्पन्न थे, जैसे-मलद और करुष- **मलदाश्च करुषाश्च मुदिता धनधान्यः**[4] मागधी नाम से प्रसिद्ध सोन नदी के तटों पर अत्यंत उपजाऊ खेत थे, जो सदैव सस्यसम्पन्न रहती थी- **सुक्षेत्रा सस्यमालिनी**[5]। स्यन्दिका नदी के पार अवान्तर जनपदों से घिरी हुई भूमि भी धान्य-सम्पन्न थी- **स्फीतां राष्ट्रवृतां रामो वैदेहीमन्वदर्शयत्**। इसी परिप्रेक्ष्य में वत्स देश की समृद्धि का वर्णन है- **ततः समृद्धाञ्शुभस्यामालिनः क्रमेण वत्सान् मुदितानुपागमत्**[6] इस प्रकार रामायण में हमें कोशल मलद करुष जनपद तथा सोन, स्यन्दिका एवं सिन्धु के तट पर बसे हुए जनपद और मधुरजनपद की धनधान्यसम्पन्नता दृष्टिगोचर होती है।

यहां एक बात ध्यान देने की है कि यदि किसी देश के राज्य या जनपद की कृषि-व्यवस्था सम्पन्न है तो इसका कारण यह है कि वहां की व्यवस्था को राजकीय संरक्षण पूर्णरूप से प्राप्त है। क्योंकि किसी राज्य की आर्थिक उन्नति शासन अथवा राजा के संरक्षण में होती है।

रामायणकाल में भी कृषि को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। स्वयं राजा भी कृषि-ज्ञान से पूर्ण रूपेण परिचित थे। उदाहरणतया स्वयं राजा जनक जब हल चलाकर भूमि-शोधन कर रहे थे तभी उन्हे जुती हुई भूमि से सीता की प्राप्ति हुई-

अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः।

क्षेत्रं शोधनतया लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता।[7]

यहां भूमि शोधन करते हुए राजा जनक के लिए प्रयुक्त विशेषण **नरपतिर्मुष्टिविक्षेपतत्परः**[8] उनके कृषि संबन्धी ज्ञान को बताता है।

१. विविध प्रकार के अन्न तथा कृषि उपकरण- रामायण में अनेक प्रकार के अन्नों का वर्णन मिलता है- यथा तण्डुल, तिल, मूँग, चन्ना, यव, गोधूम। कृषि के उपकरणों में हल का ही उल्लेख मिलता है और भूमि जोतने के लिए बैल प्रयुक्त किए जाते थे और साथ ही खेती को पकने के लिए तदनुकूल समय की भी अपेक्षा रहती थी-

कालोऽप्यङ्गी भवत्यत्र सस्यानामिव पक्तये।[9]

अनेक ऋतुओं के अनुसार कृषि की स्थित का उल्लेख रामायण में प्राप्त होता है जैसे शरद् ऋतु में

---

१. रामायण २. वही ३. वही ४. वही ५. वही
६. वही ७. वही ८. वही ९. वही

मेद्यों द्वारा अनाज को पकाकर शांत हो जाना। इसी प्रकार शरद्काल में धान का पकना- **शालिवनं विपक्वम्** आदि वर्णन प्राप्त होते हैं। रामायण में सिंचाई का प्रमुख साधन वर्षा थी- **काले वर्षति पर्जन्यः पातयन्नमृतं पयः।**[१०] एक श्लोक प्राप्त होता है जिसमें कहा गया है- **काले वर्षति पर्जन्यः सुभिक्षं विमला दिशः।**[११]

रामायणकालीन समाज में वर्षा के अतिरिक्ति नहर, कुआँ, बावड़ियों, जलाशयों तथा बाँध आदि द्वारा सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी। अयोध्याकाण्ड में श्रीराम से मिलने के लिए जाते हुए भरत द्वारा मार्ग में नहर, कुआँ, बावडियों, जलाशयों इत्यादि का निर्माण करवाया गया। इसके साथ ही यहां बांध-निर्माण का वर्णन है जहां पुल बांधने योग्य पानी देखा गया वहां बांध बना दिए जाते थे तथा आवश्यकता होने पर जल-कटाव भी किया जाता था।

बबन्धुर्बन्धनीयांश्च द्योद्यान् संचुक्षुस्तथा।
बिभिदुर्भेदनीयांश्च तांस्तान् देशान् नरास्तदा।।[१२]

उल्लेखनीय है कि अयोध्या की भूमि को अदेवमातृका अर्थात् वर्षा पर निर्भर न रहने वाली कहा गया है जिससे पता चलता है कि वहां सिंचाई के पर्याप्त साधन उपलब्ध थे। रामायण में अयोध्या से लेकर रामेश्वरम् तक भारत में २०० से अधिक स्थल तालाब, नदियां, पर्वत, वन थे जिनका रामायण में वर्णन है।

रामायण के समय किसान प्राकृतिक खाद का प्रयोग करते थे, उनके अनुसार १२ प्रकार की मिट्टी होती थी। प्रत्येक प्राकर की मिट्टी के लिए उन्होंने उचित खाद का निर्धारण किया हुआ था। तब कृषि में किसी प्रकार के विषैले कीटनाशक का प्रयोग नहीं किया जाता था। इसके परिणामस्वरूप पर्यावरण बहुत कम प्रदूषित होता था और मानवजाति को गुणवत्तापूर्ण खाद्यान्न उपलब्ध होता था।

इस से पता चलता है कि रामायणकालीन समाज में कृषि व्यवस्था पर्याप्त विकसित अवस्था में थी। कृषि सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान अर्थात् कृषि-विज्ञान का पूर्ण अस्तित्व था। यद्यपि उस समय वैज्ञानिक उपकरण नहीं थे तथापि धन-धान्य की समृद्धि देखने योग्य और अनुकरण करने योग्य थी।

इस अनुभव से हमें अतीत की सभ्यता से विरासत में मिली कृषि-प्रणाली एवं अन्य प्रणालियाँ जो हमें जीविका-अर्जन की क्षमता प्रदान करती हैं, उन्हें आज की प्रोद्यौगिकी के साथ एकीकृत करने की आवश्यकता है।

- बी-34, त्रिलोक अपार्टमेन्ट, नजदीक गुरुद्वारा, मधू विहार रोड़,
85. आई. पी. अक्सटैश्न, दिल्ली - 110092

---

११. रामायण १२. वही

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. ५
अगस्त ,२०२३

कविश्री हर्षदेव माधव की कविता में युगबोध

- डॉ. भावना सोनी

आधुनिक संस्कृत-वाङ्मय की विविध शाखा-प्रशाखाओं में निष्णात कविश्री हर्षदेव माधव गुजरात की रत्नगर्भा वसुन्धरा के ही एक अनुपम रत्न हैं। आधुनिक संस्कृत-कवियों में सर्वाधिक प्रयोगशील एवं अपारम्परिक कवि के रूप में अपना नाम दर्ज कराने वाले हर्षदेव माधव आधुनिक युगबोध के प्रतिनिधि कवि हैं। हर्षदेव के हस्ताक्षर सरस्वती के ही वरद हस्ताक्षर है। उन्होंने अपनी अविरत साहित्य-साधना से संस्कृत-जगत् को नवीन शैली व स्वरूपों का उपहार दिया है। प्रत्येक महान् कलाकार जीवन के प्रत्येक क्षण को जीता है और उस अनुभूति को कला के आवरण में सँवरकर अभिव्यक्ति देता है। लेखक के विचार एवं भावनएं उसके जीवन की ही प्रतिच्छाया होती है। एक साहित्यकार अपने युगविशेष से हट कर जी ही नहीं सकता। यही कारण है कि उनके साहित्य में भी उसके युग विशेष में प्रचलित विभिन्न जीवन-मूल्यों का प्रतिफलन स्वभावतः आया करता है। साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य की यही दर्पणधर्मिता किसी लेखक के कृतिगत युग-चित्रण का मूल्यांकन हुआ करती है।

युगबोध का अर्थ :

युगबोध का सृजन-प्रक्रिया से सीधा सम्बंध माना गया है। कलात्मक और साहित्यिक रचनाएं युगबोध से निर्मित होती हैं, तथा उसका प्रकटन भी करती हैं। विशेषरूप से युगबोध को किसी रचना की शाश्वतता और समकालीनता को जोड़नेवाली कड़ी माना जाता है। युगबोध में धर्म, राजनीति और समाज की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के कारण कभी-कभी युगविशेष का आविर्भाव या प्रवर्तन देखा जाता है। यथा- रामायण युग, महाभारत युग इत्यादि। जो युग व्यक्ति सापेक्ष होता है, वह किसी महामना व्यक्ति के जीवनचरित्र के गौरव के कारण उसी के नाम पर जनप्रिय हो जाया करता है यथा- जैन युग, बौद्ध युग, गांधी युग, नेहरु युग इत्यादि। वस्तुतः अपने युग की स्थितियों, सम्भावनाओं तथा प्रेरणाओं का बोध ही वास्तव में युगबोध कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत युगविशेष की आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, वैचारिक, दार्शनिक आदि सभी की स्थितियों, सम्भावनाओं, आस्थाओं आदि का समाहार हो जाता हैं।

युगबोध वैसे तो कोई बाद नहीं हैं, किन्तु साहित्यकार जिस युग में जीता है उसका ही प्रतिबिंब उनकी कविता में प्रकट होता है। 'मृगया' काव्यसंग्रह की अनेक कविताएं युगबोध से व्याप्त हैं। कवि ने 'मृगया' का प्रतीक प्रयोगकर वर्तमान युग के मानव की मनोदशा का तादृश वर्णन किया है। मृग में व्याप्त भय को कवि

ने सुंदर तरीके से व्यक्त किया है- अधुनाऽहं न **जीवितं जीवामि, किन्तु भयं जीवामि।**[1] भय से जीना व केवल लघुता से दैन्यता से जीना कवि को पसंद नही हैं। इसलिए कवि ने कहा है - **कोऽपि न मृगत्वाय मृत्युं ददातु।**[2]

वर्तमान समय में मानव के मन के जो अनिवार्य तत्व हैं- निर्दोषता, दया, प्रेम आदि का ह्रास हो गया है। मानवीय संवेदना ह्रास की इस प्रक्रिया को कवि ने **'मृगया'** के प्रतीक से समझाया है।

कवि ने अपने वर्तमान को खूब वास्तविक तरीके से **'मृगया'** के प्रतीक से उल्लिखिति किया है। चतुर्थ काव्य **'रावणराज्यम्'** में एक दृश्य कल्पना की सृष्टि में उत्पन्न होता है कि रावणराज्य में एक बार ही नारी का अपहरण होता है, लेकिन वर्तमान समय में बार-बार होता है।[3] **'हेमन्त'** काव्य में कवि पानखर के माध्यम से मानवजीवन की रिक्तता व निराशा का सूचन करते हैं। हमेशा बचाने वाले ईश्वर के प्रति अश्रद्धा व्यक्त करते हैं।[4] मानचित्र के माध्यम से कवि वर्तमान भारत देश में प्रवर्तित सांप्रदायिक सद्भाव का अभाव, नीतिरहित परीक्षा व्यवस्था, भ्रष्टाचार, नेताओं के वचन-पालन का अभाव व भ्रष्ट व्यवस्था तंत्र के प्रति अंगुलिनिर्देश करते है। कवि का मानना है कि देश की इस अवस्था के लिए हम ही जिम्मेदर हैं।[5]

कवि का चिंतन है कि यांत्रिक युग ने मानव को अशांति व असलामती दी है। इसलिए मनुष्य ज्यादा से ज्यादा परेशान हो रहा है। विश्वयुद्धोत्तर घटनाओं ने मानवीय संवेदनाओं का ज्यादा से ज्यादा ह्रास किया है। ऐसी ही किसी घटना के कवि साक्षी बने जैसे - **'ततः पश्चात् मम हृदयेऽपि विवराण संजातानि।**[6] वैश्विक घटनाएँ कवि-चेतना में जो स्पंदन जगाती हैं, उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति अनेक रचनाओं में देखी जा सकती है। जीवन की छलना मनुष्य को कैसे छलती है और आडम्बर का खोखलापन उसे विषाद के सागर में छलांग लगाने को बाध्य करता है। इस प्रकार के हादसों से कवि का अन्तर्मन आहत है।

हर्षदेव माधव ऐसे अपारम्परिक कवि है, जो पाश्चात्य जीवन एवं समाज से संदर्भ लेकर कविता गढ़ते हैं, भले ही वह बात जीवन का कड़वा सच क्यों न हो। कवि ने **'चींटी'** के रूप में प्रजा का विचार रख के शासकों के हाथ से परेशान होती प्रजा के चित्रण में वास्तविकता का परिचय दिया है- **राजयकार्यसक्तानां पादाः लोहपाद-त्राणयुक्ताः सन्ति। पिपीलिकानां चित्कारं कः शृणोति? शासकानां हस्ता निर्मला भवन्ति।**[7]

१. हर्षदेव माधव, व्रणो रूढग्रंथि, काव्यसंग्रह-३ मृगया, प्रका. पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद, प्रथम आवृति - २०१०, कविता - १, पृ. १५६
२. वही ३. वही, कविता - ५ पृ. १६० ४. मृगया-कविता-८, पृ. १६३
५. वही, मृगया - कविता - १०, पृ. १६६
६. हर्षदेव माधव, व्रणो रूढग्रंथि -काव्यसंग्रह - ३ मृगया, प्रका. पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद, प्रथम आवृति - २०१०, कविता - १५, पृ. १७३
७. हर्षदेव माधव, निष्क्रांता सर्वे, प्रका. संस्कृत साहित्य अकादमी, गांधीनगर, प्रथम आवृति-१९९७, पृ. ३५

स्पर्धात्मक कथन के द्वारा हिंसा के हुताशन को कवि इस तरह प्रकट करते है- **बिडालो मूषकं हन्ति। सिहो मृगं घातयति। नकुलः सर्पं अश्नाति। ते सर्वे प्राणिनः सन्ति। मानवो मानवं घातयति। मानवतां हन्ति।**[८] ऐसी सांप्रत संवेदना वैश्विक बनती है तब कवि इस तरह से उद्घाटित करते है- **वेदना 'एगेमेम्नोन' नाम्नो ग्रीकनाटकस्य वृन्दगानमस्ति।**[९] राधावल्लभ त्रिपाठी ने लिखा है कि - आधुनिक जीवन के खोखलेपन की समझ ने हर्षदेव की कविता में एक झकजोरने वाली प्रश्नाकुलता का आधान किया है।[१०]

'निष्क्रांता:सर्वे' काव्यसंग्रह के युद्ध नामक काव्य में कवि ने शांति के घातक ऐसे युद्ध की भयानकता व करुणता का निरूपण किया है। कवि के मतानुसार युद्ध मृत्यु के वस्त्र पहनकर निराशा के रण में आता है, अर्थात् युद्ध मृत्यु का संदेशा देता है। शांति भी युद्ध के कारण घायल होती है- **युद्धं मृत्योः वस्त्राणि परिधाय समुपैति नैराश्यरणे राजग्रस्ता शांतिः।**[११] **'हत्या'** नामक काव्य में कवि आधुनिक समय में हो रही खूनामरकी व हत्या विषयक चिन्तन प्रस्तुत करते हैं। हत्या के द्वारा अहिंसा की हत्या हुई है। इस दृष्टांत के द्वारा कवि गांधीजी की अहिंसा विचारधारा को प्रस्तुत करते हैं ऐसा लगता है। मानवता की हत्या करने वाला क्या मनुष्य हो सकता है? ऐसे प्रश्न करते कवि के मन में हत्या के विरोध के द्वारा विश्वशांति की ओर देखना है- **'हत्यायाः विरोध' कर्तुं नागपुरं बद्धमस्ति, देल्हीनगरं बद्धमस्ति।**[१२] **'संचारबन्धे विद्रोह'** नामक काव्य में कवि अहमदाबाद के मानवों की अशांति का अनुभव करके शांति की अवदशा का वर्णन करते हैं। इसके द्वारा कवि कहते हैं कि लोग राजद्रोह करने में अपनी शांति खो चुके हैं। मनुष्यों में एकता नहीं है- **दह्यंते शांत्यक्षराणि, कृष्यन्ते त्वेकताया वस्त्राणि, हीयते मानवतायाः सर्वस्वम्।**[१३] बाबरी विध्वंस के बाद 'अयोध्या' शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने लिखा है कि अयोध्या में मानव नहीं रहते, मात्र दुःख के टुकड़े रहते है। वहाँ के घरों में आँसुओं के दीप के साथ मात्र व्यथा ही श्वास ले रही है- **अधुना अयोध्यायां मनुष्या न वसन्ति, वसन्त्यत्र विषादखंडाः महालयेषु अश्रुदीपाः प्रज्वलन्ति।**[१४] खंडित अयोध्या की व्यथा को प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं कि - अयोध्या सीता होती तो पृथ्वी में समाती- **अयोध्या नास्ति सीता अन्यथा सा पृथ्व्यां समाधि गृह्णीयात्।**[१५] यहां कवि आतंकवादी व धर्मांध लोगों के प्रति कटाक्ष करते हैं। इस तरह सांप्रत घटनाएं कवि के युगबोध का निर्देश करती है।

---

८. हर्षदेव माधव, निष्क्रांता सर्वे, प्रका. संस्कृत साहित्य अकादमी, गांधीनगर, प्रथम आवृति-१९९७, पृ. १०२

९. वही, पृ. १३३

१०. श्रुति हर्षदेव, आधुनिक संस्कृत में अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति की कविता, प्रका. श्रीवाणी अकादमी चांदखेड़ा, प्रथम आवृत्ति - २००९, पृ. ३

११. हर्षदेव माधव, निष्क्रांता सर्वे, १९९७, पृ. १६

१२. वही, पृ. १०२

१३. वही, पृ. १०३

१४. वही, पृ. ७०

१५. वही

कवि पूरे भारतवर्ष के किसी प्रदेश पर अपनी रचना प्रस्तुत करते हैं तब उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक दृष्टि रही है। चेरापूंजी सर्वाधिक बर्षा के लिए जाना जाता है। इस स्थल का कवि वर्णन करते है- **चेरापुंजीकंठे सदैव मेघस्य घनाश्लेषः। तस्य रोमाञ्चो हरिततृणेषु कंपश्चीडवृक्षेषु।**[१६] भगवान् शिव और विष्णु का निवास महाबलीपुरम् मंदिर हवा और समुद्र के झोकों से परिपूर्ण है इस विषय में कवि ने अपना दृष्टिकोण रखा है- **महाबलीपुरं देवालयः पञ्चकवत् ममापि प्राणपञ्चकं निमज्जितमेव समुद्रे, निरवधिजलराशौ...।**[१७] **जोगजलप्रपात** कविता में कवि ने पृथ्वी की सुन्दरता का अद्‌भुत वर्णन किया है- रक्तकार्पासवृक्षवेष्ठितं जलस्वप्नं निःसृतं जोगजलप्रपाते।[१८] '**कालीघाटे**' कविता में कवि ने सती के शरीर के अंग प्रत्यंग जहां गिरे वहाँ शक्तिपीठ के स्थान का वर्णन किया है- 'कालीघाटे सुवर्णालंकारभूषिताया देव्याः मूर्त्याः वामपदचतुरङ्गल्यः कुत्र अन्विष्यामि?[१९]

मंजुलता शर्मा कवि हर्षदेव की कविता के युगबोध के विषय में कहती हैं कि - आइये यदि आपको मसूरी, हरिद्वार, उदयपुर, बंगाल, पशुपतिनाथ, सोमनाथ, सिंहलद्वीप, शिलोंग, लद्‌दाख, मिस्रदेश, यूरोपिया, नागार्जुन, कोंडा, आस्ट्रेलिया आदि अनेक स्थानों को देखने की उत्कंठा है तो कहीं जाने की जरूरत नहीं। कवि माधव की कविताओं के गलियारों में चले जाइये, सम्पूर्ण विश्व घूम लेंगे आप।[२०] रमाकान्त शुक्ल कृत बहु प्रचलित काव्यरचना 'भाति मे भारतम्' के प्रति-काव्यम् के रूप में प्रचलित, कवि हर्षदेव माधव कृत 'भाति ते भारतम्' काव्य प्रचंड युगबोध से व्याप्त है। उन्होंने अपनी इस रचना में भारत को वास्तविक स्वरूप में प्रस्तुत किया है, जैसे- **जन्मभूमेर्विवादे स्थितो राघवो, नैवकारागृहान्मुच्यते माधवः। गोवधात् दुःखितं यत्र वृंदावनं, शङ्करोऽस्ति श्मशाने सुखी भारतम्।**[२१] कवि माधव ने अपनी इस नवीन रचना में अनेकों पहलुओं को संजोया है। वे अद्यापि रामराज्य जैसा भारत चाहते तो हैं परंतु उसकी छाया भी उन्हें कहीं दिखाई नहीं देती। उन्हें तो समस्त दिशाओं में प्रताड़ित मानवता का क्रंदन सुनाई देता है-**काश्मीरे क्रंदनं दक्षिणे नकसलाः नाग्विद्रोहीर्नाग देशोऽर्दितः। जातिवादो विहारेषु वृद्धिगतः विक्लवं विह्ल्वं विस्मृतं भारतम्।**[२२] कवि का मानना है कि हम

१६. हर्षदेव माधव, रथ्यासु जंबूवर्णानां शिराणाम्, प्रका. संस्कृत सेवा समिति, अहमदाबाद, प्रथम आवृति- १९८५, कविता - ८, पृ.७

१७. वही, कविता - १४ पृ. १३

१८. वही, कविता - १६ पृ. १४

१९. वही, कविता - १७ पृ. १

२०. आधुनिक संस्कृत की नई दिशाएं - डॉ. हर्षदेव माधव अभिनन्दन ग्रंथ, सम्पा. अशोकपटेल... आदि प्रका. पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद, प्रथम आवृत्ति - २०१५, प्रेलख - ८, पृ.५४

२१. हर्षदेव माधव, भाति ते भारतम्, प्रका. सबिता दाश, ओरिस्सा, प्रथम आवृति - २००७, पृ.८

२२. वही, पृ. २९

अपने आदर्शों से गिरकर पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण कर रहे हैं- **गान्धिनाम्रा कृतं दाम्भिकं भारतम्**।[23] कवि का कहना है क्या यही है भारत और भारतीयता?

मंजुलता शर्मा का कथन है कि- स्त्रियों के प्रति माधव का हृदय कुछ अधिक ही भावुक है। 'केनापि रामेण त्यक्ता/केनापि नलेन निर्वासिता/ केनापि दुष्यन्तेन वंचिता/ केनापि हरश्चिन्द्रेन विसृष्टा। शर्मा का कहना है कि कवि स्वयं नारी के अन्तर्द्वंद्व के साक्षी है। प्राचीनकाल से लेकर आजतक नारी का बार-बार तिरस्कृत होना माधव को स्वीकार नहीं है।[24]

अत: आधुनिक संस्कृत-रचना का एक प्रतिमान तो यही चाहिए कि रचनाकार ने अपने समय में जीवन और संसार को उसकी प्रामाणिकता में किस सीमा तक पहुँचाया है। यह सत्य है कि समसामायिक संस्कृत साहित्य की कम रचनाएं ही इस प्रतिमान की कसौटी पर कसने लायक होती है। कवि हर्षदेव जीवन एवं समाज से दृष्टांत लेकर कविता का सृजन करते हैं भले ही वह जीवन का कड़वा सच क्यों न हो। कविश्री हर्षदेव माधव युग द्रष्टा ही नहीं अपितु युगस्रष्टा भी हैं। जबभी युग बदलता है युगप्रवर्तक को संघर्ष करना ही पड़ता है। नींव का पत्थर किसी को तो बनाना ही होता है। अत: वह अजेय खड़े होकर प्रत्येक प्रहार को अपनी लेखनी से त्रस्त करने पर दृढीभूत है। अत: आर्वाचीन संस्कृत को वैश्विक फ़लक पर स्थापित करने वाले इस कवि के लिए आचार्यत्व गौण हो गया है। गुजरात के कवि हर्षदेव माधव नाम है एक जुनून का, नये अनुसंधान का और एक प्रकृष्ट साधक का।

- भावनाबेन जी. सोनी, श्रीनगर सोसायटी, रोड 8, नॉर्थ ईडर,
जिला - साबरकांठा - 383430

---

२३. हर्षदेव माधव, भाति ते भारतम्, प्रका. सबिता दाश, ओरिस्सा, प्रथम आवृति - २००७, पृ. ६०

२४. आधुनिक संस्कृत की नई दिशाएं - डॉ. हर्षदेव माधव अभिनन्दन ग्रंथ, प्रथम आवृत्ति - २०१५, प्रेलख - ८, पृ. ६२

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. ५
अगस्त ,२०२३

न्यायदर्शन के अनुसार षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्षप्राप्ति

- डॉ. सत्यदेव सिंह

भारतीय षड्-दर्शनों में न्यायदर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह एक आस्तिक दर्शन है। नास्तिक मतावलम्बियों से वेदोक्त धर्म की रक्षार्थ तथा तर्क प्रमाणों से सर्वसाधारणजन को अवगत कराने हेतु यह शास्त्र बनाया गया है। इसीलिए ऋषि वात्स्यायन कहते हैं- **प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः** अर्थात् प्रमाणों के द्वारा किसी विषय की परीक्षा करना न्याय है। इस शास्त्र के **रचयिता महर्षि गौतम** हैं और **भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन** हैं। महर्षि गौतम को अक्षपाद के नाम से भी जाना जाता है।

न्यायदर्शन को पढ़े बिना कोई मनुष्य धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, सही-गलत को नहीं जान सकता। किसी वस्तु के यथार्थ स्वरूप का बोध न्यायदर्शन ही करवाता है। न्यायदर्शन पढ़ा हुआ व्यक्ति अपनी मान्यतायें, सिद्धान्त व कथन आदि का ठीक से परीक्षण कर लेता है। इतना ही नहीं, दूसरे व्यक्ति की गलती वाक्-छल, जल्प, वितण्डा आदि को भी पकड़ लेता है। सामान्य भाषा में कहें तो उसको कोई मूर्ख नहीं बना सकता और कोइ उसे ठग नहीं सकता। लौकिक व्यवहारों तथा आध्यात्मिक गूढ़-विषयों को स्पष्ट समझने की क्षमता न्यायदर्शन पढ़ने वाला व्यक्ति दृढ़ता से कर सकता है। न्यायदर्शन का मूल ग्रन्थ महर्षि गौतम का "न्याय-सूत्र" है। इस न्याय-सूत्र में पाँच अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय दो-दो आह्निकों में विभक्त है।

जैसे योगदर्शन और सांख्य-दर्शन का युगल है, मीमांसा और वेदान्त दर्शन का युगल है, वैसे ही न्याय और वैशेषिक दर्शन का युगल है। यहां युगल का तात्पर्य एक-दूसरे के पूरक होने से है, इनका एक-दूसरे का विषय मिलता जुलता है। सम्पूर्ण न्यायदर्शन को चार खण्डों में बाँटा जा सकता है। **प्रथम खण्ड** में प्रमाण सम्बन्धी विचार, **द्वितीय खण्ड में** भौतिक-जगत् सम्बन्धी, **तृतीय खण्ड** में आत्मा और मोक्ष सम्बन्धी तथा चतुर्थ खण्ड में ईश्वर सम्बन्धी विचार रखे जा सकते हैं। वास्तव में, न्यायदर्शन का जो अपना मौलिक रूप है, उसके अनुसार उसमें सोलह (१६) पदार्थों का उद्देश्य, लक्षण (परिभाषा), परीक्षापूर्वक विशद विवेचन किया गया है।

दुखों का मूल कारण जन्म लेना और जन्म लेने का कारण प्रवृत्ति (सकाम कर्म) है, सकाम कर्मो कारण दोष (राग-द्वेष-मोह) हैं। इन दोषों का कारण मिथ्याज्ञान (विपरीत ज्ञान = उल्टा ज्ञान) है जैसे रस्सी में सर्प का भान होना, या मृग मरीचिका में जल का भ्रम ज्ञान होता है। अर्थात्

मिथ्या ज्ञान ही सारे दु:खों की प्रसवभूमि है। मूल में उसे हटाने से अपवर्ग (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। भ्रम जन्म ज्ञान का नाश करने से दु:ख-पीड़ा-बन्धन-रोग-मृत्यु-अवसाद आदि कुछ भी शेष नहीं रहेगा। अब मन में सहसा प्रश्न उठता है कि मिथ्याज्ञान को हटायें कैसे? इसके उत्तर में न्यायाचार्य कहते हैं कि **"तत्वज्ञान" (यथार्थदर्शन) से मिथ्याज्ञान को दूर किया जा सकता है। तत्वज्ञान =** सत्यज्ञान प्राप्त कर लेने वाला व्यक्ति/साधक राग-द्वेष-मोह के दोषों से दूर रहेगा, परिणामत: उसका जन्म नहीं होगा और जब जन्म ही नहीं होगा तो उसे दु:ख-पीड़ा-मृत्युरोग आदि कुछ भी नहीं होगा, उसे ईश्वर से आनन्द ही आनन्द अनवरत मिलता रहेगा। यही उसका अपवर्ग प्राप्त करना है। इसके लिए न्यायदर्शन के प्रथम-अध्याय का द्वितीय-सूत्र हमारे सामने है- **दु:खजन्मप्रवृत्तिदोष मिथ्याज्ञानामुत्तराऽपाये तदनन्तरापायादपवर्ग:।**[1]

महर्षि गौतम ने समस्त बन्धनों से नितान्त मुक्त होकर परमानन्द को प्राप्त कराने हेतु सोलह (१६) पदार्थों के तत्त्वज्ञान का विवेचन न्यायदर्शन में किया है, वे सोलह पदार्थ इस प्रकार हैं- १. प्रमाण, २. प्रमेय, ३. संशय, ४. प्रयोजन, ५. दृष्टान्त, ६. सिद्धान्त, ७. अवयव, ८. तर्क, ९. निर्णय, १०. वाद, ११. जल्प, १२. वितण्डा, १३. हेत्वाभास, १४. छल, १५. जाति, १६. निग्रह-स्थान यह न्यायदर्शन के पारिभाषिक शब्द हैं। इन सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। सूत्र इस प्रकार है-

प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्त-
सिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्प-
वितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां
तत्त्वज्ञानान्नि:श्रेयसाधिगम:।[2]

सत् को ठीक अर्थात् सत् ही जानना और असत् को ठीक असत् ही जानना **तत्त्वज्ञान** है। न्यायदर्शन के अनुसार **तत्त्वज्ञान ही मुक्ति अर्थात् मोक्ष अथवा अपवर्ग का मूल उपाय** है। अब यहां पर सोलह पदार्थों के बारे में संक्षेपत: जान लेते हैं, वे क्रमश: इस प्रकार है।

१. प्रमाण- किसी विषय का यथार्थ ज्ञान पाने का कारण या उपाय को **प्रमाण** हैं। इसके द्वारा यथार्थ ज्ञान ही मिल सकता है, इससे यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के सभी उपायों का बोध होता है। न्याय दर्शन के अनुसार जितने पदार्थ हैं, सभी में यही प्रधान है। कुछ मिलाकर आठ प्रमाण माने गये हैं, वे हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव। इनमें प्रथम चार मुख्य हैं।

२. प्रमेय- प्रमाणों के द्वारा जिस वस्तु को जाना जाय उसे **प्रमेय** कहते हैं। महर्षि गौतम के अनुसार प्रमेय - १. आत्मा, २. शरीर- जो जीव के विभिन्न व्यपारों का तथा सुख-दु:खों का आश्रय है। ३. **पांच इन्द्रियाँ**, ४. **इंद्रियों के अर्थ या विषय** -गंध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द, ५. **बुद्धि**- जिसे ज्ञान और उपलब्धि भी कहते हैं- ६. **मन**- जो अन्त: इन्द्रिय या अंत:करण है और जिससे सुख-दु:ख आदि का अनुभव कर सकता है, ७. **प्रवृत्ति**- जो अच्छी या बुरी हो सकती है

---

१. न्यायदर्शन १.१.२

१. वही, १.१.१

और जो वाचिक, मानसिक, शारीरिक हो सकती है, ८. **दोष**- जो भावनायें सकाम कर्म करने के लिये प्रेरित करती हैं, उन्हें दोष कहते हैं। जैसे- काम - क्रोध - लोभ - मोह - ईर्ष्या - अभिमान इत्यादि, ९. **प्रेत्यभाव** -अर्थात् पुनर्जन्म जो हमारे अच्छे या बुरे कर्मों से होता है, १०. **फल** अथवा सुख - दुःख का अनुभव - जो हमारे पूर्वकर्मों से उत्पन्न होता है। ११. **दुःख**- जो इतना कटु है कि उसका अनुभव सभी को प्राप्त ही है। १२. **अपवर्ग** -अर्थात् दुःखों से पूर्ण विमुक्ति की अवस्था, जिसके बाद फिर दुःखों की कोई सम्भावना नहीं रहती है। ये बारह पदार्थ **'प्रमेय'** कहलाते हैं। महर्षि गौतम कहते हैं, कि मोक्ष प्राप्ति के लिए इनको जानना अति-आवश्यक है। इनको जानें बिना किसी का मोक्ष नहीं हो सकता।

३. संशय -संशय मन की वह अवस्था है, जिसमें मन के सामने दो या दो से अधिक विकल्प उपस्थित होते हैं। इस अवस्था में किसी एक विषय के विशेष धर्म का ज्ञान नहीं रहता, प्रत्युत् एक से अधिक विषयों के साधारण धर्म का ही ज्ञान रहता है। जैसे- जब हम दूरस्थ किसी वस्तु की साधारण आकृति, लम्बाई एवं मोटाई को ही देख पाते हैं, लेकिन हाथ-पैर-पत्थर आदि विशेष धर्मों को नहीं देख पाते, तो हमारे मन में यह संशय उत्पन्न होता है कि यह मनुष्य है या स्तंभ? संशय न तो निश्चित ज्ञान ही है। यह ज्ञान की ही एक अवस्था है, जिसमें किसी एक विषय के सम्बन्ध में, साथ ही साथ दो विप्रतिपत्तियाँ (विरुद्ध-विचार) मन में उठती हैं। उदाहरण के लिए देखिये- **ईश्वर निराकार है** - एक विचार है। **ईश्वर साकार है** - वह दूसरा विचार है। अब यह निर्णय नहीं हो पा रहा कि **ईश्वर साकार है या निराकार** - इसी का नाम संशय है।

४. प्रयोजन- जिसकी प्राप्ति के लिए या जिसका ज्ञान करने के लिए हम कोई कार्य करते हैं, उसे प्रयोजन कहते हैं। अर्थात् हम या तो इष्ट वस्तु को प्राप्त करने के लिए या अनिष्ट वस्तु को त्याग करने के लिए ही कोई कार्य करते हैं। ये दोनों ही प्रयोजन कहलाते हैं।

५. दृष्टान्त- सर्वसम्मत उदाहरण को दृष्टान्त कहते हैं, जिसके द्वारा कथन या वस्तु की पुष्टि होती है। यह किसी विवाद या तर्क का आवश्यक और उपयोगी अंग है। दृष्टान्त ऐसा होना चाहिए, जिसे वादी और प्रतिवादी दोनों ही एकमत से स्वीकार करें। जब कोई कहता है कि अमुक स्थान में आग अवश्य होगी, क्योंकि वहां धुआं है तो वह चूल्हे का दृष्टान्त दे सकता है, क्योंकि चूल्हे के सम्बन्ध में तो यह सभी जानते हैं कि वहाँ धुआँ भी है और आग भी है।

६. सिद्धान्त- जो किसी दर्शन के अनुसार युक्तिसिद्ध सत्य माना जाता है, उसे **सिद्धान्त** कहते हैं। यदि कोई दर्शन किसी मत को प्रतिष्ठित सत्य मानता है तो वह उस मत का सिद्धान्त समझा जाता है। जैसे- न्यायदर्शन का यह एक सिद्धान्त है कि चैतन्य आत्मा का आगन्तुक या आकस्मिक गुण है। उसी तरह भारतीय दर्शनों मे यह सर्वतन्त्र या सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि बाह्य वस्तुओं के ज्ञान के लिए इन्द्रियों की आवश्यकता है।

७. अवयव- यह न्याय दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। जब किसी मत या सिद्धान्त को अनुमान

के द्वारा सिद्ध करने की आवश्यकता होती है तो वहाँ **पञ्च**-अवयवों का सहारा लिया जाता है, ये **पञ्च अवयव** हैं- प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। अनुमान इन्हीं पाँच वाक्यों से सिद्ध होता है। इन वाक्यों को ही 'अवयव' कहते हैं। किन्तु जो वाक्य अनुमान का अंग नहीं है, उसे 'अवयव' नहीं कह सकते हैं।

८. तर्क- उस युक्ति को तर्क कहते हैं, जिसमें किसी प्रतिपाद्य विषय की सिद्धि के लिए उसकी विपरीत कल्पना के दोष दिखलाए जाते हैं। यह एक प्रकार का ऊहा (कल्पना) है। इसलिए यह प्रमाणों के अंदर नहीं आता। लेकिन यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति में यह बड़ा सहायक होता है।

९. निर्णय- किसी विषय के सम्बन्ध में निश्चित ज्ञान को **निर्णय** कहते हैं। इसकी प्राप्ति किसी न किसी प्रमाण के द्वारा ही होती है। संशय दूर होने पर ही निर्णय पर पहुँचा जा सकता है और इसके लिए सिद्धान्त के पक्ष और विपक्ष की सभी युक्तियों का विचार करना आवश्यक होता है। संशय के निराकरण के बाद ही निर्णय की प्राप्ति होती है। इसकी प्राप्ति के बाद निर्णायक के मन में कुछ भी संशय अवशिष्ट नहीं रहता। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि किसी प्रमाण के द्वारा किसी विषय के सम्बन्ध में निश्चित ज्ञान हो जाना ही निर्णय है।

१०. वाद- उस विचार को **वाद** कहते हैं, जिसमें सर्वप्रमाणों और तर्क की सहायता से तथा पञ्च अवयवों के द्वारा विपक्ष का खण्डन करके स्वपक्ष का समर्थन किया जाता है। जहाँ अन्तिम निर्णय किसी स्वीकृत सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं होता। वाद अर्थात् कथन से वादी और प्रतिवादी दोनों ही अपने मत की पुष्टि करना चाहते हैं और दूसरे के मत का खण्डन करना चाहते हैं। किन्तु दोनों का उद्देश्य यथार्थ-ज्ञान की प्राप्ति करना ही रहता है।

११. जल्प- वादी और प्रतिवादी के कोरे वाद-विवाद को **जल्प** कहते हैं, जिसका उद्देश्य यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना नहीं होता है। इसमें **वाद** के सभी लक्षण तो वर्तमान रहते हैं, लेकिन इसमें सत्य-प्राप्ति की इच्छा का अभाव रहता है। यहाँ वादियों का उद्देश्य छल, कपट, झूठ चालाकी, धोखाधड़ी आदि के द्वारा केवल विजय प्राप्त करना रहता है, जिसका फल यह होता है कि वे जान-बूझकर भी युक्तियों का प्रयोग करते हैं। जिनमें तथ्य नहीं होता। जैसे न्यायलयों में वकील अपनी बहस में कभी-कभी जल्प का प्रयोग करते हैं।

१२. वितण्डा- जिसमें वादी अपने पक्ष की स्थापना नहीं करता, केवल प्रतिवादी के पक्ष का मात्र खण्डन ही करता है उसे **वितण्डा कहते है**। जल्प में वादी किसी न किसी तरह से अपने मत का प्रतिपादन करता है और प्रतिवादी के मत का खण्डन कर उस पर विजय प्राप्त करना चाहता है, किन्तु वितण्डा में वह केवल प्रतिवादी के मत का ही जैसे-तैसे खण्डन करके जीतना चाहता है, इसके अतिरिक्ति अन्य बातों में जल्प और वितण्डा में पूरा साम्य है। अतः हम वितण्डा को निरर्थक बकवास कह सकते हैं, जिसमें वादी, प्रतिवादी के मत का खण्डन ही करता है। जैसे-वादी अपने पक्ष को साबित करने के बदले दूसरे पक्ष को छल-कपट आदि के द्वारा हराना चाहता

है और स्वयं जीतना चाहता है।

१३. हेत्वाभास- हेत्वाभास उस हेतु को कहते हैं, जो वस्तुतः हेतु नहीं होता, लेकिन हेतु के जैसा प्रतीत होता है। सामान्यतः अनुमान के दोषों को हेत्वाभास कहते हैं, जैसे- किसी ने कहा कि रोटी खाने से ही भूख मिटती है। यह हेतु नहीं, हेत्वाभास है। क्योंकि भूख केवल रोटी खाने से ही नहीं मिटती, अपितु चावल, फल आदि के खाने से भी मिट जाती है।

१४. छल- छल एक प्रकार के दुष्ट-उत्तर का नाम है। जब प्रतिवादी शब्दों का विवक्षित अर्थात् प्राकरणिक अर्थ को छोड़कर कोई दूसरा अर्थ ग्रहण करके दोष दिखलाता है तो उसे **छल** कहते हैं। मान लीजिए कोई कहता है कि बालक के पास नव कंबल है। वक्ता के कहने का आशय है कि बालक के पास नया कंबल है किन्तु छलवादी कहता है कि **नव कंबल** नहीं है, क्योंकि उसके पास **नौ कंबल** नहीं हैं, तो यह छल होगा। व्यापक अर्थ में प्रयुक्त शब्द को संकुचित अर्थ में लेकर या मुख्यार्थ को छोड़कर गौण अर्थ में लेना या लाक्षणिक अर्थ को लेकर आक्षेप करना भी **छल** कहलायेगा।

१५. जाति- शब्द यहां एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह भी दूसरे प्रकार का दुष्ट-उत्तर ही है। जब हम वादी को दोष-रहित युक्ति का खण्डन करने के लिए किसी भी प्रकार के सादृश्य या वैषम्य पर अवलम्बित दुष्ट अनुमान की सहायता लेते हैं, तो उस अनुमान को **जाति** कहते हैं। मान लीजिए एक अनुमान है कि **शब्द** अनित्य है, क्योंकि यह घट की भाँति एक कार्य है। अब यदि इस अनुमान का खण्डन करने के लिए कोई कहे कि 'नहीं' शब्द नित्य है, क्योंकि यह काल की तरह अदृश्य है, तो यह एक **जाति** होगी, क्योंकि नित्य और अदृश्य में कोई नियत सम्बन्ध नहीं है। जब कोई व्यक्ति अपने पक्ष की सिद्धि के लिए पञ्चावयव का सही प्रयोग करता है। तब दूसरा व्यक्ति समझ लेता है कि **मेरे पास इसका सही उत्तर नहीं है। मेरी बात झूठ सिद्ध हो चुकी है, फिर भी इसको मूर्ख बनाने की कोशिश करता हूँ, शायद मेरी चाल चल जाए।** ऐसा सोचकर वह कुछ साधर्म्य अथवा कुछ वैधर्म्य दिखाकर चालाकी से विपक्षी का अनुचित खण्डन करने लगता है, उसको ही **जाति** कहते हैं।

१६. निग्रह स्थान- वाद-विवाद में जहाँ पराजय का स्थान पहुँच जाता है, उसे निग्रह-स्थान कहते हैं। निग्रह स्थान के दो कारण हैं- एक तो गलत ज्ञान, दूसरा अज्ञान। जब कोई वादी या अपने विपक्षी की युक्तियों का अर्थ ठीक रूप से नहीं समझता है या समझा नहीं सकता तो वह एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है, जहाँ हार माननी पड़ती है। जब वाद-विवाद में कोई प्रतिज्ञा हेतु को बदलता है या दोषपूर्ण युक्तियों की सहायता लेता है तो वह भी उसकी पराजय का कारण होता है।

न्याय-दर्शन में अन्य भारतीय दर्शनों की तरह जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। मोक्ष के स्वरूप और उसके साधन की चर्चा करने के पूर्व, बन्धन के सम्बन्ध में कुछ जानना अपेक्षित होगा। न्यायदर्शन के मतानुसार आत्मा, शरीर-इन्द्रियों और मन से भिन्न हैं। परन्तु अज्ञान के कारण आत्मा, शरीर-इन्द्रिय अथवा मन से अपना

पार्थक्य नहीं समझती। इसके विपरीत वह शरीर, इन्द्रिय और मन को अपना अंग समझने लगती है। जब इन विषयों के साथ वह तादात्म्य प्राप्त कर लेती है तब इसे ही 'बन्धन' कहते हैं। बन्धन की अवस्था में मानव-मन में गलत धारणायें निवास करने लगती हैं। इनमें कुछ गलत धारणायें निम्नलिखित हैं- १. अनात्म तत्त्व को आत्मा समझना, २. क्षणिक वस्तु को स्थायी समझना अर्थात् असत्य को सत्य, ३. दु:ख को सुख समझना, ४. अप्रिय वस्तु को प्रिय समझना, ५. कर्म एवं कर्म-फल का निषेध करना तथा ६. मोक्ष अपवर्ग के सम्बन्ध में सन्देह करना आदि-आदि।

बन्धन की अवस्था में आत्मा को सांसारिक दु:खों के अधीन रहना पड़ता है। जिसके कारण आत्मा को निरन्तर जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इस प्रकार जीवन के दु:खों को सहना तथा पुन:-पुन: जन्म ग्रहण करना ही बन्धन है। बन्धन का अन्त ही मोक्ष है।

नैयायिकों के अनुसार **मोक्ष** दु:ख के पूर्ण निरोध की अवस्था है। **मोक्ष** को अपवर्ग भी कहते हैं। अपवर्ग का अर्थ है- शरीर और इन्द्रियों के बन्धन से आत्मा का मुक्त होना। जब तक आत्मा, शरीर-इन्द्रिय और मन से ग्रसित रहता है, तब तक उसे दु:ख से पूर्ण छुटकारा नहीं मिल सकता है। महर्षि गौतम ने **दु:ख के आत्यन्तिक उच्छेद** अर्थात् दु:खों का सभी प्रकार से छुटकारा होना ही मोक्ष कहा है। हमें प्रगाढ़ निद्रा के समय या किसी रोग से विमुक्त होने पर दु:ख से छुटकारा कुछ ही काल तक के लिए मिलता है और पुन: दु:ख की अनुभूति होती है। **मोक्ष** इसके विपरीत दु:खों से हमेशा के लिए मुक्त हो जाने का नाम है।

नैयायिकों के मतानुसार 'मोक्ष' एक ऐसी अवस्था है, जिसमें आत्मा के केवल दु:खों का ही अन्त नहीं होता है, अपितु उसके सुखों का भी अन्त हो जाता है। मोक्ष की अवस्था को आनन्दविहीन माना गया है। आनन्द सर्वदा दु:ख से मिले रहते हैं। दु:ख के अभाव में आनन्द का भी नाश हो जाता है। कुछ नैयायिकों का कहना है कि आनन्द की प्राप्ति शरीर के माध्यम से होती है। मोक्ष में शरीर का नाश हो जाने से आनन्द का भी अभाव हो जाता है। इससे प्रमाणित होता हे कि मोक्ष में आत्मा अपनी स्वाभावकि अवस्था में आ जाती है। वह सुख-दु:ख से शून्य होकर बिल्कुल अचेतन (मूर्च्छित) हो जाती है। किसी प्रकार की अनुभूति उसमें शेष नहीं रह जाती। यह आत्मा की चरम अवस्था है। इसका वर्णन अभयम् (Freedom from fear), अजरम् (Freedom from decay and change) , अमृत्युपदम् (Freedom from death) , इत्यादि अभावात्मक रूपों में भी हुआ है।

अब प्रश्न उठता है कि मोक्ष प्राप्त करने के उपाय क्या हैं ? नैयायिकों के अनुसार सांसारिक दु:खों या बन्धन का मूल कारण अज्ञान है। अज्ञान का नाश तत्त्व ज्ञान के द्वारा ही सम्भव है। तत्त्वज्ञान होने पर मिथ्याज्ञान स्वत: निवृत्त होता है। जैसे- रज्जु (रस्सी) के ज्ञान से सर्प विषयक ज्ञान स्वत: निवृत्त होता है।

शरीर को आत्मा समझना मिथ्या ज्ञान है। इस मिथ्याज्ञान का नाश तभी हो सकता है, जब मनुष्य (आत्मा) अपने को शरीर व इन्द्रियों या

मन से भिन्न समझे। इसलिए तत्त्वज्ञान को अपनाना आवश्यक है। मोक्ष पाने के लिये न्याय दर्शन में श्रवण, मनन और निदिध्यासन पर जोर दिया गया है। **श्रवण**- मोक्ष पाने लिए शास्त्रों के विशेष रूप से उनके आत्मा विषयक उपदेशों को सुनना चाहिए। **मनन**- आर्ष शास्त्रों के द्वारा आत्मा-विषयक ज्ञान पर विचार करना चाहिये तथा उसे सुदृढ़ बनाना चाहिए।

निदिध्यासन- मनन के बाद योग दर्शन में बतलाये गये मार्ग के अनुसार परमात्मा का निरन्तर ध्यान करना अपेक्षित है, इसे निदिध्यासन कहते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग है।

इन अभ्यासों का फल यह होता है, कि मनुष्य आत्मा को शरीर से भिन्न समझने लगता है। मनुष्य के इस मिथ्या ज्ञान- ''मैं शरीर और मन हूँ''- का अन्त हो जाता है और उसे आत्म-ज्ञान हो जाता है। आत्मा को जकड़ने वाले धर्म और अधर्म का नाश हो जाने से, शरीर और ज्ञानेन्द्रियों का नाश हो जाता है। आत्मा को वासनाओं और प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करनी होती है। इस प्रकार 'आत्मा' पुनर्जन्म एवं दु:ख से मुक्त हो जाती है। यही अपवर्ग है और यही मोक्ष कहलाता है।

हमने पीछे विचार किया कि सांसारिक विषयों से इन्द्रियों का हटाकर मन को ईश्वर के चिन्तन में लगाना होता है। उपासना (ध्यान) के लिए **ध्यानं निर्विषयं मन:**- (सांख्य दर्शन ६/२५)- अर्थात् मन में से सांसारिक विषयों को हटाकर ईश्वर का चिन्तन करना **ध्यान** है। अत: समाधि (ध्यान-उपासना) में मन का सहयोग लेना ही होता है, इसके बाद ही ईश्वर की अनुभूति साधक/योगी को हो पाती है।

यही बात महर्षि दयानन्द जी ने उपनिषद् के वचन को उद्घृत करते हुये 'सत्यार्थप्रकाश' के सप्तम समुल्लास में लिखा है-

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो,
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा,
स्वयन्तदन्त: करणेन गृह्यते।।

अर्थात् जिस पुरुष (साधक) का समाधियोग से अविद्या आदि मल नष्ट हो गया है, आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त जिसने लगाया है, उसको जो परमात्मा के योग का सुख होता है, वह वाणी से कहा नहीं जा सकता, क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा अपने 'अन्त:करण' से ग्रहण करता है।

वस्तुत: यही तात्पर्य 'उपासना' शब्द में भी निहित है क्योंकि 'उपासना' कहते समय साधक/योगी ईश्वर के समीप होता है।

तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम् (योगदर्शन-१/२) के अनुसार भी जब साधक (योगी) का **चित्त एकाग्र और निरुद्ध** हो जाता है, तब सब के द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासना विषय के अन्तर्गत महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने पृष्ठ संख्या - १९३,१९५ व २०३ पर लिखा है-

योग को करने वाले मनुष्य तत्त्व अर्थात्

ब्रह्म ज्ञान के लिये जब अपने मन को परमेश्वर में युक्त करते हैं, तब परमेश्वर उनकी बुद्धि को अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेता है।

"हे उपासक लोगो! तुम योगाभ्यास तथा परमात्मा के योग से अपनी योनि अर्थात् अपने '**अन्तःकरण को शुद्ध और परमानन्दस्वरूप परमेश्वर में स्थिर**' करके उसमें उपासना विधान से विज्ञान बीज को अच्छी प्रकार से बोओ।

आगे पृष्ठ २०३ पर लिखा है (**तदा द्रष्टुः..**) इसी प्रकार "**मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है तब परमेश्वर में**" स्थिर हो जाती है।

संक्षेपतः न्याय दर्शन में बताये गये १६ पदार्थों का वास्तविक ज्ञान/सत्यज्ञान हो जाने पर, साधक/योगी के मोक्ष का द्वार खुल जाता है और दृश्य जगत् से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। सांसारिक मोह-माया, राग-द्वेष आदि नष्ट हो जाते हैं। अपने जीवन को चलाने और अपने लक्ष्य की प्राप्ति करने के लिए साधक मनुष्य संसार के पदार्थों से यथासम्भव सहयोग लेंगे भी और सहयोग देंगे। वह अनासक्त भाव से अपने समस्त कार्य पूर्ण करेंगे। तत्पश्चात् साधक सांसारिक व्यवहारों को पूरा करता हुआ मोक्षमार्ग (श्रेयमार्ग) पर तीव्रता के साथ चल पड़ता है।

इस प्रकार न्याय दर्शन में बताये गये १६ पदार्थों के तत्त्वज्ञान से, अथवा ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति आदि सब पदार्थों के तत्त्वज्ञान से अविद्या (मिथ्याज्ञान) का नाश होता है और मिथ्याज्ञान के नष्ट हो जाने पर (उससे उत्पन्न होने वाले) राग- द्वेष-मोह दोषों के नष्ट होने पर सकामकर्म भी बन्द हो जाते हैं। साधक के द्वारा सकाम कर्म न करने से आगे आने वाला जन्म भी रुक जाता है, जब अगला जन्म रुक गया या अगला जन्म नहीं हुआ तो दुःख पूरी तरह समाप्त हो जाता है। इसी को मोक्ष कहते हैं। इस मोक्ष में ईश्वर के साथ सम्बन्ध जुड़ जाने से परमानन्द की प्राप्ति होती है।

- 507, गोदावरी ब्लॉक, अशोका सिटी, कृष्णा नगर, मथुरा - 281004 (उ.प्र.)

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

महाकवि भास विरचित प्रतिमानाटक में पारिवारिक सम्बंधों की अभिव्यंजना

- सुश्री सुमन बाला

प्राचीन भारतीय संस्कृति मानव मात्र के लिए अनुकरणीय आदर्श रही है। इस आदर्श का दर्पण रामायण है। रामायण के आदर्शों को केन्द्र मानकर विविध दृष्टिकोणों के आधार पर अनेक महाकाव्यों और नाटक आदि की रचनाएँ हुई हैं। भास ने रामायण को उपजीव्य लेकर अनेक रूपकों की रचना की है। इन्हीं रूपकों में 'प्रतिमानाटकम्' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह नाटक राजपरिवार से जुड़ा होने पर भी पूर्णतः जन जीवन को अभिव्यक्त करता है। यहाँ इस व्यवस्था में पारिवारिक सम्बंधों की उत्तम अभिव्यंजना हुई है। नाटक में माता, पिता पुत्रादि समस्त सम्बंधों का आदर्श आचरण चित्रित हुआ है। नाटक में इन पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्युत्तम है। समाज की उत्तमता, विश्वसनीयता और सुस्थिति के लिए ऐसे पात्रों का अनुकरण आवश्यक है।

मुख्य बिंदु- प्रतिमानाटक में संस्कृति, सामाजिक-व्यवस्था, पारिवारिक सम्बंध, इकाई, माता, पिता, भाई, पत्नी, अभिव्यंजना प्रकृति का दिग्दर्शन-

यह कथन सुसम्बद्ध और सुस्थापित हो चुका है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है'। यह साहित्य चाहे प्राचीन हो या अर्वाचीन, स्थानीय हो या विदेशी, यह चाहे किसी भी भाषा में हो- किसी समालोचक द्वारा सार रूप में कहा गया यह वाक्य शाश्वत सत्य हो गया है। कविता विशिष्ट प्रतिभा का ही परिणाम है।[1] विशेषज्ञ आचार्यों ने अध्ययन अध्यापन तथा विश्लेषण की सुविधा के लिए काव्य एवं कविता का अपनी मान्यताओं के अनुसार वर्गीकरण किया है। यहाँ दृश्य काव्य और श्रव्य-काव्य के रूप में किया गया वर्गीकरण हमारे लिए सुविधाजनक रहेगा। श्रव्य काव्य में कविता के लिए आवश्यक कल्पना तत्त्व विस्तारार्थ पर्याप्त अवकाश रहता है; पर दृश्य- काव्य में वास्तविकता अधिकतम रहती है। यह प्रत्येक भाषा के साहित्य के विषय में समान रूप से कहा जा सकता है। भाषाओं में प्राचीनतम भाषा संस्कृत है। संस्कृत में दृश्य काव्यों का प्रणयन निरंतर होता रहा है। यहाँ सामाजिक व्यवस्था के आदर्श और यथार्थ चित्र भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। संस्कृत के प्राचीनतम दृश्य काव्यों (नाटक सहित सभी भेदों) में महाकवि भास की रचनाएँ मिलती हैं। सामाजिक व्यवस्था शीर्षक के अन्तर्गत भास की रचनाओं में विशाल भंडार है। अतः इतने विस्तार को छोड़कर केवल प्रतिमा नाटक को केन्द्र में रखते हैं। इसमें भी समस्त सामाजिक व्यवस्था की अपेक्षा इसके अंगस्वरूप 'पारिवारिक सम्बंध' पर चर्चा उचित है।

मनुष्य की एक-एक इकाई से परिवार तथा पारिवारिक इकाइयों से समाज का निर्माण होता है। परिवारों की सुदृढ़ता स्वस्थ समाज का निर्माण करने में सक्षम है। स्वस्थ समाज समुन्नत राष्ट्र की नींव है।

---

१. अग्निपुराणम् (साहित्यदर्पणः- प्रथमः परिच्छेदः)

इस परम्परा से समझा जा सकता है कि सामाजिक ढाँचे की मूलभूत इकाई परिवार है। सामाजिक सम्बंध परिवार को सुगठित करते हैं। महाकवि भास के अधिकांश रूपक रामायण और महाभारत के उपजीवी हैं। ये दोनों महाकाव्य परिवारों के प्रेम एवं स्नेह तथा विवादों पर आधारित हैं। इस शोध-पत्र में भास प्रणीत नाटक में चित्रित पारिवारिक सम्बंधों को ही कसौटी पर रखकर देखते हैं। परिवार की इकाई में पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू, भाई, श्वश्रु, ससुर, देवर, भाभी, मित्र, सेवक इत्यादि सब सम्मिलित हैं। महाकवि भास की रचनाओं में अधिकांशतः आदर्श और उज्ज्वल चरित्र आए हैं। यथा-

माता-पुत्रः- मनुष्य के जीवन का प्रारंभ माता से होता है।[2] यद्यपि **कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति**[3] भी लोकप्रसिद्ध है। पर सामान्यतः सन्तान माता की निन्दा करना तो दूर, वह इसे सुन भी नहीं सकता। कांचुकीय द्वारा कैकेयी को राज्य की लोभिनी कहे जाने पर राम तत्काल प्रतीकार करते हुए कहते हैं- मैं माँ की निन्दा नहीं सुन सकता।[4] किसी भी आयु के व्यक्ति के लिए माँ का वात्सल्यपूर्ण स्पर्श अद्‌भुत उत्साहवर्धक होता है। देवकुलिक से राम के वनवास से सम्बद्ध विवरण और पिता दशरथ की मृत्यु सुनकर भरत मूर्च्छित हो गए। इस अवसर पर माताओं का आगमन सुनकर देवकुलिक ने कहा- **हस्तस्पर्शो हि मातृणामजलस्य जलांजलिः।**[5] माताओं के हाथ का स्पर्श प्यास से व्याकुल व्यक्ति के लिए तृप्तिकारक जल के समान होता है। माता के लिए संतान सर्वस्व होती है। वह अपना सब कुछ देकर भी उसे सुखी देखना चाहती है। उसकी दृष्टि में पुत्र सदैव सर्वथा निष्पाप, निष्कलुष और पवित्र होता है। नाटक के एक प्रसंग में कैकेयी ने अपने पुत्र भरत को राम के वनवास विषय पर स्पष्टीकरण दिया है। सुमन्त्र ने राज दशरथ को मिले शाप की घटना बतलाई। भरत ने माँ के साथ किए गए दुर्व्यवहार के लिए क्षमा माँगी तो कैकेयी ने कहा- **का नाम माता पुत्रकस्यापराधं न मर्षयति।**[6]

पित-पुत्र- लोक व्यवहार में स्पष्टतः दिखाई देता है कि पिता और पुत्र का सम्बंध पवित्र बन्धन से जुड़ा रहता है। पुत्र की पिता के प्रति असीम आदर से परिपूर्ण स्नेहमयी भक्ति होती है और पिता पुत्र से अनन्य स्नेह रखता है। इतिहास में पिता के कार्यार्थ अनेक पुत्रों का बलिदान और अनेक पिताओं द्वारा पुत्र हेतु सर्वस्व सौंप देने की घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। रामायण में दशरथ ने पुत्र के प्रेम में प्राण त्याग दिए तो राम ने उनकी आज्ञा के पालन के लिए राजसिंहासन के त्याग सहित चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार कर लिया। ऐसे ही प्यार के एक दृश्य में राम के राज्याभिषेक का निर्णय हो चुका था। राम ने आदर और श्रद्धा के साथ पिता के चरणों में सिर रख दिया तो दशरथ के आँसुओं से राम का सिर तथा राम के आँसुओं से दशरथ के पाँव भीग गए-

समं वाष्पेण पतता तस्योपरि ममाप्यधः।
पितुर्मे क्लेदितौ पादौ ममापि क्लेदितं शिरः।[7]

भरत ननिहाल से आकर राम, सीता और लक्ष्मण का वनगमन एवं पिता के मृत्यु विषयक समाचार को सुनकर अत्यंत संतप्त हुए। वे राम को वापिस लाने के लिए नागरिकों सहित वन में गए। अपने पवित्र उद्‌देश्य में असफल हुए तो उनके आदेश से शासन संभाला। सीताहरण का समाचार सुनकर भरत ने सचिव सुमन्त्र को वास्तविकता

२. माता निर्माता भवति। - निरुक्तम् ३. देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्, श्लोक - ०२
४. अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि। प्रतिमानाटकम् पृष्ठ - ३१ ५. वही, ३/१२
६. वही, ६/१५ ७. अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि। प्रतिमानाटकम् पृष्ठ - १/०६

जानने के लिए भेजा। फिर वापिस आए सुमन्त्र से भरत ने पहला ही प्रश्न किया- **अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः।**[8] अर्थात् क्या आप लोक में आविष्कृत होने वाले पिता के प्रति स्नेह स्वरूप राम से मिल सके हैं।

राजा दशरथ के आदेश स्वरूप राज्याभिषेक करके राम सीता के पास पहुँचते हैं। सीता दशरथ द्वारा राम को राज्य सौंपकर वानप्रस्थ ग्रहण की बात से व्याकुल हो जाती है तो राम भी अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहते हैं-

स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि
वचः कस्तत्र भोः विस्मयः?[9]

पुत्र यदि पिता के आदेशानुसार चलता है तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? ऐसा करना पुत्र का स्वाभाविक कर्त्तव्य है। यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो वह कुपुत्र है और अपयश का भागी होता है। एक अन्य प्रसंग का चित्रण करते हुए भास ने पिता दशरथ के प्रति भरत की कल्पना को साक्षात् किया है। भरत सूत के मुख से दशरथ की अस्वस्थता सुनते हैं। वेग से चलते रथ में बैठे वे आत्मीय जनों से मिलने की उत्सुकता में है। इस मिलन के विचारों में वे पिता से भेंट की कल्पना में सूत से कहते हैं- अयोध्या पहुँचकर मैंने आदरपूर्वक पिता के चरणों में अपना सिर रख दिया है। पिताजी मुझे भरपूर स्नेह के साथ ऊपर उठा रहे हैं- मैं ऐसा चित्र देख रहा हूँ-

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः
स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापितः।[10]

यह अद्भुत स्नेह और आदरपूर्ण समर्पण का विशिष्ट आदर्श है। ऐसे आचरण भारतीय संस्कृति के प्राण हैं।

पति-पत्नी- यह एक संस्कारित सम्बंध है। यह सृष्टिचक्र का आधार है। आचार्य दीक्षांत भाषण में शिष्य को उपदेश देता है कि गुरुकुल से जाकर उत्तम आचरण करना और नैतिक दायित्व मानकर सृष्टिचक्र की निरंतरता के लिए विवाह करके सद्गृहस्थ का जीवन-यापन करना।[11] परिणय सम्बंध से दम्पती दो शरीरों में एकात्म हो जाते हैं। सीता ने कौतूहलवश वल्कल वस्त्र धारण किए तो राम ने कहा-

मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया।।[12]

मैं परिहास में वल्कल माँग रहा हूँ तुम स्वयं दुःख उत्पन्न मत करो। तुमने मेरे शरीर के आधे भाग से अपने आप पहले ही इन वल्कलों को बाँध लिया है। तुम मेरे शरीर का आधा भाग हो। तुमने जब इनको पहन लिया है, तो समझो मैंने भी पहन लिया है। ऐसी होती है- पति-पत्नी की पारस्परिक विश्वसनीयता। इसीलिए पत्नी का पर्यायवाची अर्धांगिनी भी है। राम को सीता से अत्यधिक अनुराग है। प्रसाधन के एक दृश्य में तो राम सीता की सहायता के लिए उसके समक्ष दर्पण लेकर खड़े हो जाते हैं। जिससे सीता सुविधानुसार आभूषण धारण कर सके।

तेन हि अलंक्रियताम्। अहमादर्शं धारयिष्ये।[13]

सीता ने वनवास में पति के साथ जाने का संकल्प दर्शाया। राम ने उनहें वन में सम्भावित कष्ट और खतरे दिखाकर न जाने के लिए मनाना चाहा तो सीता ने साधिकार कहा कि मैं आपकी सहधर्मिणी हूँ।[14] अपहरण के बाद सीता की दहाड़ सुनकर स्वयं रावण ने कहा- **अहह! अहो पतिव्रतायास्तेजः।**

---

८. अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि। प्रतिमानाटकम् पृष्ठ - १७८ ९. वही, १/०५
१०. वही, ३/३ ११. आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। तैत्तिरीयोपनिषद्, १/११/२
१२. प्रतिमानाटकम्, १/१० १३. वही, पृ. २३ १४. ननु सहचारिणी खल्वहम् पृ. ३९

योऽहमुत्पतितो वेगान्न दग्धः सूर्यरश्मिभिः।
अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिरक्षरैः।।[15]

मैं पुष्पक विमान में सवार होकर आकाश में तेज गति से उड़ा हूँ पर सूर्य की किरणें और वायुघर्षण मुझे नहीं जला सका। पर सीता द्वारा कहे गए "मैंने तुझे शाप दिया है" इन थोड़े-से शब्दों से ही मैं झुलस गया हूँ।

सास-ससुर- विवाहित नर-नारी का सम्बंध पति-पत्नी दोनों से जुड़ता है। प्रतिमा नाटक में राम के श्वशुर जनक या सीता की माता से सम्बद्ध कोई घटनाक्रम उपस्थित नहीं हुआ है। अतः यह बिंदु सीता और राजा दशरथ तथा राम की माताओं कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी से जुड़े प्रसंगों पर आधारित है। भारतीय समाज में सीता को सब सम्बंधों के निर्वाह की दृष्टि से आदर्श माना जाता है। सुमन्त्र, राम, सीता और लक्ष्मण को रथ द्वारा वन में छोड़ आए। दशरथ उनके वियोग में सन्तप्त होकर समुद्रगृह में लेटे हुए हैं। खाली रथ लाने वाले सुमन्त्र को देखकर वे तीनों को बार-बार पुकारते हैं। वे सीता के लिए कहते हैं-

हा साध्वि मैथिलि पतिस्थितचित्तवृत्ते
हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः।[16]

दशरथ सीता को संतानवत् पुकारते हैं। प्रतिमा नाटक में पुत्रवधू के रूप में सीता का चरित्र उत्तम है। वनगमन के लिए उद्यत सीता को राम कहते हैं-

श्वश्रूश्वशुरसुश्रूषापि च ते निर्वर्तयितव्या।[17]

भारतीय समाज के संस्कारों में अपने से बड़ों के आदर, मान, सत्कार और सेवा का स्वभाविक विधान है। यही कर्तव्य राम ने सीता को याद दिलाया है। सास-ससुर भी पुत्रवधू को हार्दिक स्नेह से दुलारते हैं। वे उसे वंश का गौरव मानकर उसके अपमान को वंश का अपमान मानते हैं। वनवास से लौटकर अयोध्या पहुँचे राम का सीता को-

मैथिली! श्वश्रूजनपुरोगं भरतमवलोकयितुं
विशालीक्रियातां ते चक्षुः।[18]

तथा सीता के अभिवादन के उत्तर में माताओं द्वारा सुदीर्घ सैभाग्य का अशीर्वाद देना।[19] पारिवारिक सम्बंधों की उत्तम अभिव्यजना है।

भाई-भाई- रामायण सभी पारिवारिक सम्बंधों का आदर्श है। यहाँ भातृ-प्रेम का भी अद्‌भूत निदर्शन मिलता है। प्रतिमा नाटक में भी इस आदर्श का यथावत् चित्रण हुआ है। बड़े भाई राम के प्रति आदर की पराकाष्ठा लक्ष्मण द्वारा सीता के प्रति कहे गए इन वचनों में देखी जा सकती है-

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्तुमिच्छसि।
तवैव दक्षिणः पादो मम सव्यो भविष्यति।[20]

मेरे पूजनीय भ्राता के चरणों की सेवा आप अकेले ही करना चाहती हो। आप दाएँ पैर की सेवा करना। मैं बाएँ पैर की सेवा कर लूँगा। भाई का स्नेह अनिर्वचनीय है।[21] साहित्य में ही नहीं लोकप्रसिद्धि में भी राम-लक्ष्मण और राम-भरत भ्रातृप्रेम तत्काल उसके पास पहुँचते हैं। इसी तथ्य को दशरथ के देहान्त ओर रामादि के वनवास से अनजान भरत ननिहाल से अयोध्या पहुँचने पर प्रमाणित करते हैं। वे सूत से कहते हैं कि मुझे अपने भाईयों के साक्षात् दर्शन-से हो रहे हैं।[22]

लक्ष्माण अनिवार्यता न होने पर भी स्वेच्छा से भाई राम के साथ वन में जाने के लिए उद्यत है। वह भी कुछ दिन के लिए नहीं, पूरे चौदह वर्ष के लिए। भरत राजसिंहासन स्वीकार न करके राम को वन से वापिस लाने के लिए चल देते हैं। असफल होने पर उनकी चरणपादुकाओं के

---

१५. ननु सहचारिणी खल्वहम्, ५/२०   १६. वही, २/४   १७. वही, पृ. ३९
१८. ननु सहचारिणी खल्वहम् पृ. २०३   १९. वत्से, चिरमंगला भव। पृ. २०   २०. वही, १/२७
२१. भ्रातृतस्नेहोऽयमीदृशः।४/१२   २२. त्वरितमुपगता इव भ्रातरः।३/३

अधीन रहकर शासन चलाते हैं। चौदह वर्ष के बाद "जस की तस धर दीन्हीं चदरिया"। भ्रातृप्रेम के इससे उत्कृष्ट उदाहरण ओर क्या हो सकते हैं? राम को चीर वस्त्र धारण करते देखकर लक्ष्मण का यह कथन कितना मार्मिक है–

निर्योगान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्ध प्रदाय मे।
चिरमेकाकिना बद्धं चीरं खल्वसि मत्सरी।[२३]

भ्रातः! वस्त्र आभूषण आदि सभी उपयोगी वस्तुएँ आपने मुझसे सदा बाँटी हैं। अब यह चीर वस्त्र अकेले ही धारण कर लिया है। लगता है आप को भी लोभ आ गया है, जो मुझे इनमें हिस्सा नहीं दे रहे हो।

देवर-भाभी : देवर-भाभी के सम्बंध में रामायण में लक्ष्मण द्वारा स्थापित **नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले**[२४] वाला आदर्श ही प्रतिमा नाटक में भी स्थापित किया गया है। भास ने इस सम्बंध की पवित्र झाँकी प्रस्तुत की है। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भाभी सीता को मातृवत् पूज्या मानते हैं, तो सीता भी देवरों को माता के दृष्टिकोण से सन्तानवत् स्नेह का पात्र मानती है। भरतादि यथासमय सीता को प्रणाम करके आशीर्वाद लेते हैं। भरत राम को वनवास से वापिस लेने के लिए गए। वहाँ पहुँचने पर राम ने सीता से कहा–

इयं स्वयं गच्छतु मानहेतोर्मातेव
भावं तनये निवेश्य।
तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा
हर्षास्रमासारमिवोत्सृजन्ती।।[२५]

अर्थात् पुत्र के प्रति स्नेह को अपने हृदय में धारकर माता के समान अश्रुपूर्ण नेत्रों से परिपूर्ण होकर सीता भरत का आदर करने के लिए स्वयं वहाँ जाएँ और भरत को यहाँ ले आएँ। इन पारिवारिक सम्बंधों की मनभावन अभिव्यंजना के अतिरिक्त भास ने गुरु, मित्र और सेवक जैसे संबंधों का भी सुरुचिपूर्ण चित्रण किया है। गुरु के प्रति भरत का कथन है कि "गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता।"[२६] राम के वन गमन पर सेवक रुदन करते हैं। राम और सुग्रीव की मित्रता हो जाने पर दोनों एक दूसरे के कार्यों को पूर्णतः सम्पन्न करते हैं।

इस प्रकार महाकवि भास के प्रतिमा नाटक में पारिवारिक सम्बंधों की अनुकरणीय अभिव्यंजना हुई है। यह तत्कालीन भारतीय समाज का साक्षात् दर्पण है। यहाँ उदात्त चरित्रों के माध्यम से पारिवारिक सम्बंधों का उत्कृष्ट अंकन हुआ है।

– सहायक प्राध्यापिका, सरस्वती शिक्षण महाविद्यालय, हिसार। (हरियाणा)

---

२३. त्वरितमुपगता इव भ्रातरः। १/२६
२४. वाल्मीकीयरामायणम्, ४/६/२२-२३
२५. प्रतिमानाटम्, ४/१३
२६. न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम्। वही, पृ. ७९

परिशिष्ट

१. पुस्तक समीक्षा

२. सस्थान-समाचार

३. पुण्य-पृष्ठ

पुस्तक-समीक्षा

समीक्षक - एस.एम. गोयल
पुस्तक का नाम - परिवार सौरभ
सम्पादक - कृष्णचन्द्र टवाणी
प्रकाशक - ज्ञानमंदिर, सिटी रोड़, मदनगंज-किशनगढ़ (राज.)३०५८०१
मूल्य - ६३/- रूपये

ज्ञानमंदिर, किशनगढ़ अपनी द्विमासिक पत्रिका "**अध्यात्म अमृत**" के माध्यम से अध्यात्म रस का पान तो कराता रहता ही है साथ-साथ समय-समय पर जनमानस के हितार्थ ज्ञानवर्धक सामग्री का प्रकाशन भी करता रहता है। इसी श्रृंखला में संस्था के प्रधान सम्पादक श्री कृष्णचन्द्र जी टवाणी द्वारा सम्पादित अद्यतन कृति है "**परिवार सौरभ**" जो वर्तमान समय में बिखरते परिवार को किस प्रकार सुखी, सम्पन्न व आनन्दित बनाया जा सकता है हेतु मार्गदर्शन का कार्य करेगी।

ऋषियों व मनीषियों ने सामाजिक कल्याणार्थ जीवन को चार वर्गों में रखा है- ब्रह्चर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। सभी वर्ग व बाल्यावस्था से मृत्यु पर्यन्त मुख्य धुरी है, गृहस्थ जिसे आम भाषा में कहेंगे परिवार । परिवार क्या है? पुत्र, पौत्रादि, बुजुर्ग, मुखिया, पति-पत्नी, भाई-बहिन अन्य छोटे-बड़े आत्मीयजनों के समूह को कहा जाता है परिवार। इसे सब प्रकार से सुवासित रखने हेतु प्रस्तुत संकलन में विद्वानों के अनेक आलेख हैं। कुछ प्रमुख संतों व ज्ञानी लेखकों में से हैं गायत्री- उपासक पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, स्वामी गोविन्ददेव जी गिरि, स्वामी तेजोमयानंद जी, पूज्य श्री ललितप्रभ जी, पूज्य श्री चन्द्रप्रभ जी, देवर्षि कलानाथ जी शास्त्री, डॉ. भीकमचंद प्रजापित, डॉ. विजयकुमार त्रिपाठी व अन्य। भगवान् शंकर के परिवार को सर्वश्रेष्ठ परिवार के रूप में माना जाता है। कारण ? अनेक विभिन्नताओं में होते है सामंजस्य के दर्शन। भस्म रमाये शिव का कण्ठाहार सर्प, वाहन नंदी, पार्वती का वाहन सिंह, पुत्र गणेश का वाहन मूषक और स्वयं गजमुख, द्वितीय पुत्र षडमुख कार्तिकेय का वाहन मयूर, इनकी रुचियाँ, इनके आहार-व्यवहार भिन्नता लिए फिर भी शिवजी अथवा पार्वती जी ने उन सबको एकसूत्र में बांधकर एक आदर्श परिवार की मिसाल उपस्थित की है। इसे भव्य आकर्षक रूप में रंगीन चित्र के माध्यम से आवरण पर संजोया भी गया है। उपनिषदीय सूत्र है- "**मातृदेवो भव, पितृदेवो भव**" इसी आधार पर कतिपय लेखों में परिवार की सम्प्रभुता में माता को वरीयता दी गई है तो कतिपय अन्य में

पिता को, वस्तुत: तो दोनों ही समान रूपेण इसके अधिकरी हैं। सुखी परिवार हेतु सभी सदस्य श्रमशील, स्नेहशील व सहनशील हों तो वहाँ निश्चय ही सौरभ महकेगी ही।

एक चिंतनीय परिस्थिति की विस्तार पूर्वक चर्चा यहाँ कि गई है, जो वर्तमान में अधिक संवेदनशील हो गई है। वह है संगठित या संयुक्त परिवार का विघटन और एकल परिवार का चलन। इस समस्या के कतिपय कारण है– पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, अर्थ को सुखी जीवन का स्रोत मान लेना, महिला वर्ग का उच्च शिक्षण प्राप्त कर प्रबंधन संस्थाओं में अर्थोपार्जन हेतु दूर जाना व दीर्घ समयावधि कार्य करना, आध्यात्मिक विचारों की उपेक्षा, स्वयं के सुखों का ही ध्यान रखना आदि। एकल परिवार की पीढ़ी केवल चरम भौतिक सुख से जीना चाहती है। आज जीवन दृष्टि अर्थ प्रधान बनती जा रही है। मुधर वाणी जो घर की दौलत होती है आज लुप्त होती जा रही है।

ऐसे में सबसे अधिक त्रस्त व उपेक्षित है वयोवृद्धजन। वे उपेक्षा एवं तिरस्कार का जीवन जी रहे हैं। यत्र तत्र वृद्धाश्रमों में अथवा घर के किसी कोने में। स्वामी श्रद्धानंद जी द्वारा दिए चार सूत्र इस विषय में कुछ लाभ दे सकते हैं:-

१. बुढापे में कभी खाली नहीं बैठें, २. कम से कम बोले, ३. बिना माँगे सलाह न दें, ४. अपने में सहन शक्ति विकसित करें।

इस प्रकार मात्र ६३ रूपये में इस संकलन के आलेख वर्तमान परिस्थितियों में भी परिवार, विशेषकर वृद्धजनों के जीवन को सुकून, शांति व सुख प्रदान कर सकेंगे। यहाँ वहाँ अनेक सुवासित सूत्र भी उपादेय हैं। पृष्ठ १२१ पर एक पिता का बेटी को लिखा पत्र अत्यन्त मर्मस्पर्शी है, जिसे अवश्य पढ़ा जाना चाहिए। ज्ञानमंदिर मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान) से यह पुस्तक प्राप्त की जा सकती है।

- 52/4, अग्रसेन नगर, अजमेर - 305001

संस्थान-समाचार

अनुदान-

डी.ए.वी. कॉलेज मैनजिंग कमेटी, नई दिल्ली। 5,00,000/-

दान-

Sh. Rajesh Kumar Sharma England	25,000/-
Smt. Mamta Suri, Jalandhar	1,100/-
Dr. S. L. Chawala, Jalandhar.	5,000/-
Sh. Arun Kumar Gupta, Ahmedabad.	5,000/-
सदाशिव मन्दिर, सिद्ध योग आश्रम कांगड़ा (हि. प्र.)	5,100/-
Sh. Gaurav Jain, Hoshiarpur (Mrs. Ranjana Sharma U.S.A.)	41,000/-
Dr. Renu Kapila, Hoshiarpur.	1,000/-
Dr. Ashwani Juneja, Hoshiarpur.	1,100/-

हवन-यज्ञ - विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

शोक समाचार -

संस्थान के आजीवन सदस्य एवं हितैषी श्री ओम प्रकाश सूद का देहान्त

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के आजीवन सदस्य एवं परम हितैषी श्री ओम प्रकाश सूद जी का 88 वर्ष की आयु में दिनांक 16-04-2023 को होशियारपुर में देहान्त हो गया। आप बड़े ही सज्जन और हंसमुख व्यक्ति थे। आप समय-समय पर साधु आश्रम आया करते थे। आप अपने पीछे भरा-पूरा परिवार छोड़ गये हैं। इस शोक के अवसर पर संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की दुःखी परिवार के साथ हार्दिक समवेदना है। प्रभु से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे और दुःखी परिवार को इस दुःख को सहने की शक्ति दे। **ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्ति ऊँ !**

यदा निवृत्तः सर्वस्मात्, कामो योऽस्य हृदि स्थितः।
तदा भवति सत्त्वस्थः, ततो ब्रह्म समश्नुते॥
महा. शान्ति, 66. 38

इस संसार में रहते हुए भी जब व्यक्ति अपने हृदय में विद्यमान सभी प्रकार की इच्छाओं से रहित हो जाता है तब वह अपने ही स्वरूप अर्थात् अपनी आत्मा में स्थिर होकर ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है अर्थात् परब्रह्म के पद को प्राप्त करने के सदृश आनन्द का अनुभव करता है।

पूज्य पिताश्री

श्री चमन लाल जी जुनेजा

(निधन 10-12-2000)

पूज्या माताश्री

श्रीमती रुक्मिणी देवी जुनेजा

(निधन 31-07-2011)

को श्रद्धासुमन भेंट

प्रयोजकवर्गः

डॉ. अश्वनी जुनेजा (सुपुत्र),डॉ. श्रीमती नीलम जुनेजा (पुत्रवधु)
डॉ. चैतन्य जुनेजा (पौत्र), डॉ. श्रीमती शुभदा जुनेजा (पौत्रवधु)
डॉ. अक्षय जुनेजा (पौत्र), डॉ. श्रीमती वैशाली जुनेजा (पौत्रवधु)
अनायशा जुनेजा (प्रपौत्री) अयांश जुनेजा (प्रपौत्र)

रुक्मिणी स्कैन सैंटर

नज़दीक नई तहसील, होशियारपुर।

सत्संग मन्दिर

संस्थान यज्ञशाला

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-०७-२०२३ को प्रकाशित।